स्थापना वर्ष:१९४२

नूतन निष्काम पत्रिका

नूतन निष्काम पत्रिका * वर्ष-9 * अंक-4 * मुम्बई * अप्रैल-2018 * मूल्य-रु.9/-

वैदिक मिशन मुम्बई के कार्यक्रम की झलकियां

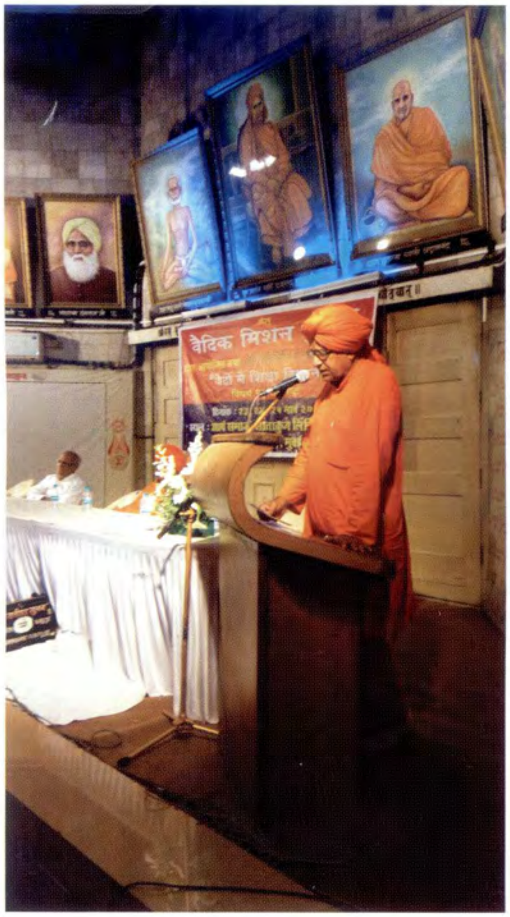

राजा प्रवाहण के पाँच प्रश्न

डॉ. भवानीलाल भारतीय

आरुणि ऋषि का पुत्र श्वेतकेतु प्रञ्चाल देश के क्षत्रियों की एक सभा में आया। वहाँ जीवल का पुत्र प्रवाहण नाम का राजा उपस्थित था। उसने श्वेतकेतु से पूछा-हे कुमार! क्या तुम्हारे पिता ने तुम्हें ब्रह्मविद्या सिखाई है? उत्तर में श्वेतकेतु ने स्वीकार किया कि हाँ, उसने पिता से अध्यात्मविद्या सीखी है। इस पर राजा ने उससे पाँच प्रश्न किए-

१. प्रजाएँ मरकर जहाँ जाती है, उस लोक को क्या तू जानता है?

२. मृत प्रजाएँ या जीव लौटकर पुन: यहाँ आते हैं, उस लोक को क्या तू जानता है?

३. देवयान और पितृयान मार्गों के अन्तर को क्या तू जानता है?

४. प्रजाओं की निरन्तर वृद्धि होने पर भी वह लोक (परलोक) भर नहीं जाता, इसका क्या कारण है?

५. पाँचवीं आहुति में हवन किया हुआ जल पुरुष के वचन का हो जाता है, क्या तू इसे जानता है?

श्वेतकेतु ने कहा कि इन पाँच प्रश्नों में से वह किसी एक का भी उत्तर नहीं दे सकता। इस पर राजा ने कहा, ''जो मनुष्य इन गूढ़ प्रश्नों के उत्तर नहीं दे सकता, भला वह अपने-आपको सुशिक्षित कैसे कहा सकता है।'' श्वेतकेतु लज्जित होकर स्वगृह लौट आया और अपने पिता से बोला, ''आपने मुझे अध्यात्मविद्या की शिक्षा दिए बिना ही कह दिया कि तू शिक्षित हो चुका। मेरे उस क्षत्रिय मित्र राजा प्रवाहण ने मुझसे पाँच प्रश्न पूछे मैं उनमें से एक का भी उत्तर नहीं दे सका।'' जब आरुणि ने उन प्रश्नों की जिज्ञासा की तो उसने स्वीकार किया कि इन प्रश्नों का समाधान तो वह स्वयं भी नहीं कर सकता। उसने स्पष्ट माना कि यदि वे रहस्य मुझे अवगत होते तो मैं तुझे क्यों नहीं बताता।

अब श्वेतकेतु का पिता स्वयं राजा प्रवाहण के निकट आया। राजा ने आगत अतिथि का सम्मान किया। प्रात:काल होते ही गौतम (पिता) राजा की सभा में उपस्थित हुआ तो राजा ने उसे यथेच्छ धन देने की इच्छा प्रकट की। गौतम तो ब्रह्मविद्या जानने के लिए आया था, इसलिए उसने कहा, ''महाराज, यह लौकिक धन मुझे नहीं चाहिए। आपने मेरे पुत्र को जो प्रश्न पूछे, मुझे तो उनके उत्तर जानने की ही इच्छा है।'' इसे सुनकर एक बार तो राजा को इसलिए पीड़ा हुई कि देखो, आज ब्राह्मण कहलानेवाले भी अध्यात्मविद्या से हीन हो गए हैं। अब उसने गौतम को अपने समीप पर्याप्त समय तक व्रत धारण करते हुए रहने के लिए कहा। जब व्रत समाप्त हुआ तो राजा प्रवाहण ने पुन: गौतम से कहा, ''अब मैं तुम्हें वह विद्या अवश्य दूँगा, किन्तु याद रक्खो कि यह अध्यात्मविद्या का रहस्य पूर्वकाल के ब्राह्मणों को भी अज्ञात था। तुम ही इसके प्रथम श्रोता हो।'' राजा के इस कथन से ऐसा विदित होता है कि उस युग में ब्राह्मण प्राय: यज्ञ-यागादि करने-कराने में ही लिप्त रहने थे, किन्तु राजन्य-वर्ग ब्रह्मचर्चा में लगा रहता था। उपनिषदों में प्राय: ब्रह्मविद्या के जितने प्रवक्ता हुए हैं, वे अधिकांश में क्षत्रिय हैं। इस तथ्य को बताकर राजा ने गौतम के प्रश्नों का उत्तर दिया।

उत्तर देते समय प्रवाहण ने सबसे पहले पंचम प्रश्न को लिया और बताया कि भगवद् भक्ति की कल्पना भी एक यज्ञ के रूप में की जा सकती है। तब लौकिक अग्नि को ही यज्ञाग्नि मानना होगा। सूर्य समिधा-तुल्य है। अग्नि से पैदा होनेवाला धुआँ सूर्य की रश्मियाँ हैं; दिन का प्रकाश ही यज्ञाग्नि की ज्वालाएँ हैं; चन्द्रमा को ही आग का अंगारा मानना होगा। इस महान् यज्ञ को हम निरन्तर निसर्ग (प्रकृति) में होता देख रहे हैं। देव अर्थात् विद्वान् पुरुष इस यज्ञ में श्रद्धा का चरु (होम करने योग्य पदार्थ) बनाकर उसकी आहुति देते है। इस श्रद्धा की आहुति से इस यज्ञ में सोम राजा का जन्म होता है, अर्थात् श्रद्धा से ही सौम्य भाव वाले परमात्मा के दर्शन होते है। इसी क्रम में प्रवाहण ने यज्ञ के लिए अन्य रूपकों का भी उल्लेख किया और अन्त में स्त्री-पुरुष द्वारा सन्तानोत्पादन को भी एक यज्ञ ही बताया जिससे पुत्र-लाभ होता है। सद्गृहस्थ होकर धर्मपूर्वक दाम्पत्य जीवन व्यतीत करना भी अग्निपरिचर्या या अग्निहोत्र का सेवन ही है। इस सन्तानोत्पादनरूपी यज्ञ में पुरुष का वीर्य ही पुरुषवाची होता है।

अब क्रमश: अन्य प्रश्नों के उत्तर सुनो।

(२) जन्मा हुआ मनुष्य अपनी आयु की नियम तिथि तक शरीर धारण किए रहता है। अन्त में जब उसकी मृत्यु होती है तो वह ईश्वरीय व्यवस्था के अनुसार अन्य योनिमें जाता है। यह प्रथम प्रश्न का उत्तर है कि मरने के पश्चात् जीवात्मा अपने शुभाशुभ कर्मों के अनुसार अन्य योनियों को प्राप्त होता है।

(३) अब देवयान और पितृयान के भिन्न-भिन्न मार्गों का वर्णन करते हैं। जो अध्यात्मज्ञान-सम्पन्न मनुष्य आरण्यक जीवन व्यतीत करते हुए जब तपस्यायुक्त आयु भोगकर शरीरत्याग करते हैं तो उनका मार्ग देवयान का होता है। इसके द्वारा वे तेजोमय ब्रह्म का साक्षात्कार करते हैं, यही देवयान है। किन्तु जो लोग ग्रामों या नगरों में रहकर सकाम कर्म करते है, वे या तो वैदिक यज्ञ-यागादि में प्रवृत्त रहते हैं अथवा लोक-हितार्थ कूप, तड़ाग, धर्मशालाएँ आदि बनाते हैं। प्रथम वर्णित वैदिक यज्ञों का करना इष्ट कर्म है और सामान्यजनों की भलाई के लिए कुएँ खुदवाना धर्मशाला आदि स्थान बनवाना आपूर्त कर्म कहलाते है। इस प्रकार सकाम कर्म करने वाले उपासक मोक्ष को तो प्राप्त नहीं करते, किन्तु निश्चित अवधि तक स्वर्गलोक में निवास का (सुखों का अनुभव कर) पुन: सृष्टिचक्र में आते हैं और नया जीवन धारण करते है। इसे ही पितृयान कहा गया है।

(४) शुभ आचरण करनेवाले लोगों को आगे भी शुभ जन्म ही मिलता है। वे स्वकर्मानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य कुल में जन्म लेते है और द्विजोचित कर्म करते है। इसके विपरीत अशुभ और दुष्ट आचरण करनेवालों को कुत्ता, सूअर और चाण्डाल आदि की पतित योनियाँ प्राप्त होती है।

(५) अब राजा प्रवाहण इस प्रश्न का उत्तर देते हैं कि लोगों के निरन्तर जन्म लेने पर भी यह लोक भर क्यों नहीं जाता अथवा परलोक ही भर क्यों नहीं जाता? उत्तर स्पष्ट है। जो देवयान या पितृयान में से किसी एक भी गति को प्राप्त नहीं करते, उनके लिए तो बार-बार जन्म लेने और बार-बार मरने की ही गति विधाता ने लिख दी है। वे जायस्व और म्रियस्व (जन्मो और मरो) इसी द्वन्द्र में पडे रहते हैं। 'पुनरपि जननं, पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम्' से ही उनका छुटकारा नहीं होता। तब भला यह लोक या परलोक क्यों भरेगा? यह आवागमन तो निरन्तर चलता ही रहेगा। किन्तु यह आवागमन का चक्र है निन्दित= जुगुप्सायुक्त। इससे छूटने का प्रयास ही वास्तविक पुरुषार्थ है।

आख्यायिका के उपसंहार में उपनिषद्-प्रवचनकर्ता आचार्य ने बताया कि पाँच महापापों का सेवन करनेवाले निश्चय ही आवागमन से नहीं छूटते। ये पंच महापाप है-१. स्वर्ण की चोरी (साधारण चोरी भी पाप रही है), २.मदिरापान, ३. गुरुपत्नी से व्यभिचार, ४. विद्वान् (ब्रह्मवेता बाह्मण) को मारना (सामान्य हत्या भी पाप ही है), ५. उपर्युक्त चार प्रकार के पापियों के समीप रहना भी महापाप है। अपने उपदेश को समाप्त करते हुए राजा प्रवाहण ने ब्राह्मण गौतम को कहा, ''जो ज्ञानी उपासक इस उपनिषद्-विद्या को जानता है, वह स्वयं अपने जीवन को शुद्ध एवं पवित्र बनाता है तथा पापों से सभी लिप्त नहीं होता। वह तीनों लोकों को पवित्र मानता है तथा उनकी रक्षा करता है- त्रायते भुवनत्रयम्।''

❒❒❒

आर्य समाज सांताक्रुज़, मुम्बई का मासिक मुखपत्र
वर्ष : ९ अंक ४ (अप्रैल-२०१८)

- दयानंदाब्द : १९४, विक्रम सम्वत् : २०७४
- सृष्टि सम्वत् : १,९६,०८,५३,११८

प्रबन्ध संपादक : चन्द्रगुप्त आर्य
संपादक : संगीत आर्य
सह संपादक : संदीप आर्य
कार्यकारी संपादक : विनोद कुमार शास्त्री
लालचन्द आर्य, रमेश सिंह आर्य,
यशबाला गुप्ता.

विज्ञापन की दरें : शुल्क

- पूरा पृष्ठ : रु. ३,०००/- • एक प्रति : रु. ९/-
- १/२ पृष्ठ : रु. २,०००/- • वार्षिक : रु. १००/-
- १/४ पृष्ठ : रु. १,५००/- • आजीवन : रु. १०००/-
- विशेषांक की दरें भिन्न होंगी ।

वर्गीकृत विज्ञापन

रु. १०/- प्रति शब्द, न्यूनतम रु. ५००/-

चैक/डीडी/मनी आर्डर आदि 'आर्य समाज सान्ताक्रुज' के नाम से ही भेजें, मुंबई के बाहर के चैक न भेजे। विज्ञापन सामग्री १० तारीख तक भेजें। **'नूतन निष्काम पत्रिका'** का मुद्रण ऑफसेट विधि से होता है।

पता : आर्य समाज सांताक्रुज़
(विठ्ठलभाई पटेल मार्ग) लिंकिंग रोड, सांताक्रुज़ (प.), मुंबई -५४. फोन : २६६० २८००, २६६० २०७५

अनुक्रमणिका	पृष्ठ सं.
राजा प्रवाहण के पाँच प्रश्न	२
सम्पादकीय	३
विश्वशान्ति का केवल एक ही मार्ग हैं वैदिक धर्म	४
मनु का विरोध क्यों?	५
समीक्षा-भागवत दर्पण	६
हम प्राण-अपान की साधना से सुरूप बनें	७
संसार में शान्ति प्राप्त करने का एक मात्र उपाय..	८
यक्ष युधिष्ठिर संवाद	९-१२
महर्षि दयानन्द	१३-१५
विचार शक्ति का चमत्कार	१५
मन/मनोबल	१६

सम्पादकीय

वैदिक वर्ण - व्यवस्था

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में महर्षि दयानन्द ने लिखा है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार भेद गुण कर्मों से किये गये हैं। इनका नाम वर्ण इसलिये है कि जैसे जिसके गुण कर्म हों, वैसा ही उसको अधिकार देना चाहिये।

संक्षेप में महर्षि के आगमन के पूर्व तथाकथित हिन्दू समाज (वास्तव में भ्रमित वेदिकधर्मी) जन्मपोषित वर्ण व्यवस्था के कारण खोखला होते जा रहा था।

जन्मपोषित वर्णव्यवस्था को अवैदिक घोषित करते हुये महर्षि ने आर्ष ग्रंथों के प्रमाण सामने रखकर कर्मपोषित वर्णव्यवस्था का प्रतिपादन किया। महर्षि दयानंद द्वारा स्थापित आर्य समाज के माध्यम से कार्यकर्ताओं ने कुरूतियों का विरोध किया और महर्षि द्वारा स्मरण कराये गये कर्मपोषित वर्णव्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिये कई प्रयास किये। गुरुकुलों की स्थापना एवं शिक्षा इसमें एक अहम कड़ी थी। आर्य समाज द्वारा स्थापित गुरुकुलों में ब्रम्हचारी/ विद्यार्थी अपने सिर्फ पहले नाम से जाने जाते थे। आर्य समाज द्वारा स्थापित गुरूकुलों में वर्ण भेद नहीं था। किंतु जब तथाकथित ब्रह्मचारी / विद्यार्थी गुरुकुल से निकलकर आगे की शिक्षा के लिए कॉलेज में प्रवेश लेता था तब उसकी तथाकथित जाति के कारण कॉलेज में उसका बहिष्कार हो जाता था।

वर्तमान में आवश्यकता है कि हम पहले अपने आपको उस समुदाय का समझकर, उनके बीच बैठकर उनकी पीड़ा को समझे, तब उनके दर्द/पीड़ा का पता चलेगा। उनके पूर्वजों को कितना अपमानित किया गया है। इन सुधारों के लिए राजनैतिक दलों से उम्मीद रखना समझदारी नहीं है। सारी दुनिया जानती है कि तथाकथित भारतीय पूंजीवादी प्रवृत्ति का है और सिर्फ पैसा जोड़ना जानता है। मंदिरों में कितना धन निष्क्रिय पड़ा है यह दुनिया जानती है। महर्षि के आंदोलन को आगे चलाया होता तो हालात कुछ और होते। वर्तमान राजनीति सिर्फ सत्ता हासिल करने के लिये है। हमें स्वयं अपने से शुरुवात करके बदलाव लाना पड़ेगा और इसके लिये सिर्फ और सिर्फ आर्य समाज ही सही मंच है। अन्य मंच जन्मना ब्राह्मण पोषित वर्ण व्यवस्था के पक्षधर हैं किंतु आर्य समाज कर्मानुसार सबको बराबर मानते हुये कर्मपोषित वर्ण व्यवस्था को आगे बढ़ाने का प्रयास करता है। स्वामी रामदेव इस का उदाहरण है।

वर्तमान में देश में जो एक वर्ग के प्रति आरक्षण को लेकर असन्तोष बढ़ाया जा रहा है ये शुभ संकेत नहीं हैं। जिन तथाकथित सवर्णों के पूर्वजों द्वारा एक वर्ग को उसके अधिकारों से वंचित रखा गया था आज हमे उनके जीवन स्तर को ऊंचा उठाने के लिये समग्र प्रयास की सराहना करनी चाहिये और यह स्मरण रहे कि आर्य समाज का आंदोलन का हिस्सा था। आज कुछ संकीर्ण विचारों के समर्थकों के साथ आर्य समाज को खड़ा न रहकर स्वयं अपनी कर्मपोषित वर्णव्यवस्था को पोषित करने का प्रयास करना चाहिये वरना आर्य समाज के सिद्धांतों के अस्तित्व को और प्रकारांतर में महर्षि द्वारा स्थापित आर्य समाज उद्देश्यों का कोई औचित्य नहीं रह जायेगा।

संगीत आर्य
मो.: ९३२३५ ७३८९२

॥ ओ३म् ॥

विश्वशान्ति का केवल एक ही मार्ग हैं वैदिक धर्म

खुशहाल चन्द्र आर्य

जैसे सत्य एक ही होता है, असत्य अनेकों हो सकते हैं। दो बिन्दुओं को मिलाने वाली रेखा केवल एक ही हो सकती है, टेडी-मेडी अनेकों हो सकती हैं। वैसेही धर्म भी एक ही हो सकता है बाकी मत, पंथ, सम्प्रदाय अनेकों हो सकते हैं। धर्म वह होता है जो केवल मानव मात्र ही नही बल्कि प्राणी-मात्र की भलाई व कल्याण चाहने वाला हो। किसी भी जीव के प्रति अन्याय, पक्षपात व अत्याचार न करता हो। सब प्राणियों का पिता केवल एक ईश्वर ही है, इसीलिए जितने भी प्राणी हैं, वे सभी ईश्वर के पुत्र व पुत्रियाँ हैं। पिता अपने सभी पुत्र व पुत्रियों को एक समान ही प्यार करता है, इसलिए जो धर्म ईश्वर-प्रदत्त होगा, वही धर्म सभी प्राणियों का हितकारी व कल्याणकारी होगा। वेद ईश्वर के बनाए हुए हैं, इसलिए वैदिक धर्म यानि वेदोंके अनुसार चलते वालाधर्म ही पूर्ण मानव-मात्र का धर्म हो सकता है। बाकी जितने भी धर्म के नाम से प्रचलित मत, पंथ, सम्प्रदाय हैं वे सब किसी न किसी व्यक्ति विशेष द्वारा चलाए हुए हैं। मनुष्य एक अल्पज्ञ प्राणी है, यह चाहे कितना भी मधन् क्यो न हो, उसके अल्पज्ञ होने के बाते कुछ न कुछ कभी व स्वार्थ जरूर-जरूर रहेगा। वह अपने ही मत वालों को अधिक पसन्द करेगा और दूसरों के मतवालों को कम पसन्द करेगा। यही भेद-भाव लड़ाई झगडे की जड़ है और एक दूसरे को अलग-अलग करनी है और दुःख कारण है। विश्व में जितने भी मत व पंथ हैं वे सभी किसी न किसी व्यक्ति विशेष द्वारा चलाए हुऐ हैं। जैसे ईसाई मत ईशा ने चलाया था। मुस्लिम मत मोहम्मद साहब ने चलाया था, पारसी मत भूसा ने चलाया था, सिख मत गुरु नानक ने चलाया था। जैन मत महावीर स्वामी ने चलाया था और बौद्ध मत महात्मा बुद्ध ने चलाया था। इन मतों से विश्व का कल्याण कभी नहीं हो सकता इसलिए इन मतों को मानने से विश्व में सुख व शान्ति कभी भी स्थापित नहीं हो सकती। अब प्रश्न उठता है कि वैदिक धर्म से ही विश्व में सुख व शान्ति कैसे स्थापित हो सकती है? इसके निम्नलिखित मुख्य कारण हैं।

वैदिक धर्म सृष्टि के आदि में ईश्वर-प्रदत्त धर्म है:- मनुष्य ने स्वाभाविक ज्ञान कम और नैमित्तिक ज्ञान अधिक, पशु पक्षियों में स्वाभाविक ज्ञान अधिक ओर नेमित्तिक ज्ञान बहुत कम होता है। स्वाभाविक ज्ञान वह होता जो जीवन चलाने के लिए आवश्यक होता है, जैसे खाना-पीना, सोना-जागना, उठना-बैठना, रोना-हँसना तथा सन्तान पैदा करना आदि। इन कामों का फल नही मिलता कारण ये हर जीव के लिए करने जरूरी हैं। दूसरा ज्ञान है नैमित्तिक ज्ञान, यह सीखाने से सीखा जाता हैं। यह ज्ञान मनुष्य में अधिक है, इसीलिए मनुष्य सीखाने से सीखता है। बिना सिखाए वह मूर्ख ही बना रहता है। इसीलिए ईश्वर ने सृष्टि के आरम्भ में चार वेद जिनके नाम ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद व अथर्व वेद है, यह चारोंवेद चारों आर्षयो जिनके नाम अग्नि, वायु आदित्य व अंगीरा थे, उनके हृदय में ईश्वर ने चारों वेदो का प्रकाश क्रमशः किया और लोगों सुनाया। वैसे तो चारों वेदों का सन्देश चारों ऋषियों के मुख से सभी उपस्थित स्त्री व पुरुषों ने सुना पर ब्रह्मऋषि ने उन चारों वेदों को कण्ठस्थ कर लिया और उसने अपने शिष्यों को तथा अन्य लोगों को सुनाया।और इन लोगों ने अपने पुत्रों व पौत्री को सुनाया। इस प्रचार यह सुनाना और सुनना की परम्परा चालू हो गई। जब तक कागज, साही, दवात, कलम का अविष्कार नहीं हुआ और वेद पुस्तकों में लिखा नहीं गया, तब तक यह परम्परा चलती रही। पुस्तकों में लिखे जाने के बाद यह परम्परा प्रायः समाप्त हो गई, पर दक्षिण में अभी भी चलती आ रही है। इसी लिए वेदों कोश्रुति भी कहते है जिसका तात्पर्य है सुन-सुन कर सीखना। ईश्वर ने वेदों में मनुष्यों के लिए यही ज्ञान दिया है कि मनुष्य को क्या क्या करने चाहिए और क्या काम नहीं करने चाहिए। जिन कामों को करने से मनुष्य, धर्म, अर्थ, काम को धर्मानुसार यानि वेदानुसार करने से इनके फल मोक्ष को प्राप्त कर सकता है जो मानव-मात्र का आन्तिम लक्ष्य है जिसके पाने के लिए ईश्वर जीवको मनुष्य योनि में भेजता है। इसीलिए हम कह सकते है कि वैदिक धर्म ही एक ऐसा सच्चा धर्म है जिसके अनुसार चलने से मनुष्य अपने जीवनमें स्वयं भी सुखी व प्रसन्न रह सकता है और दूसरों को भी सुखी व प्रसन्न रख सकता है। इसीलिए इसी धर्म को संसार में सुख व शान्ति स्थापित करने का आधार मानते हैं।

२. वैदिक धर्म ही प्राणी-मात्र से प्रेम रखने की बात कहता है और परस्पर प्रेम से रहने की बात सिखाता है किसी से भी भेद-भाव रखने को नहीं सिखाता कारण वैदिकधर्म मानव मात्र का धर्म है। किसी एक जाति, देश या वर्ग का नही हैं। ईश्वर सबका पिता है और यह धर्म उस पिता के द्वारा ही चलाया हुआ है। हम सब उस परम पिता परमात्मा के पुत्र व पुत्रियाँ हैं। पिता अपनी सन्तान का भला व कल्याण करना चाहता है इसलिये ईश्वरने हमारे कल्याण के लिए ही वेदों का प्रकाश चार ऋषियों के हृदय में किया। वेदों में इतिहास भी नहीं है कारण यह अनादि है। इतिहास बाद में जाता है।

३. वेदोंमें न कोई कुछ घटा सकता है और न कोई कुछ बढ़ा सकता है कारण यह पूर्ण ज्ञान है और पूर्ण ज्ञानवान् ईश्वर द्वारा प्रदत्त हैं। बाकी हमारे धार्मिक ग्रन्थ रामायण, महाभारत, गीता, मनुस्मृति आदि में ब्राह्मणों ने अपने स्वार्थ के लिए यानी मिलावट कर दी है परन्तु वेदों में ये स्वार्थी ब्राह्मण कोई मिलावट नहीं कर पा रहे है कारण इनके स्वस्वर बोलने में चढाव-उतराव इस किस्म से है जिसके बोलने से मिलावट पकडी जाती है इस से वे मिलावट नही कर पाते इसलिये वह ईश्वरीय ज्ञान आज भी हमारे पास ज्यों का त्यों है। इस अद्वितियता से यह सिद्ध होता है कि यह वेदज्ञान ईश्वर का है।

४. मानव-मात्र का धर्म वही हो सकता है जो सृष्टि के आरम्भ से चला हो। बाद में चला हुआ धर्म, मानव-मात्र का नही हो सकता कारण उस धर्म के चलने से पहले भी कोई धर्म माना जाता होगा। बाद मे किसी व्यक्ति द्वारा चलाया हुआ धर्म, धर्म न हो कर कोई मत पंथ व सम्प्रदाय ही है जो कोई वर्ग विशेष द्वारा माना जाता है। इसलिए वैदिक धर्म जो सृष्टि के आरम्भ से चला हुआ है वही मानव-मात्र का धर्म है, अन्य नहीं।

५. वेद किसी देशीय भाषा में नहीं हैं, वेद संस्कृत भाषा में हैं जो अन्यभाषाओंकी जननी है और सृष्टि के आम्भ की भाषा है। अन्य आर्ष ग्रन्थ किसी देशीय भाषा में हैं इसलिए वह मानव-मात्र का धर्म नहीं हो सकता।

६. वेद, प्रकृतिके अनुसार है, वेदों में प्रकृति के विरुद्ध कोई बात नहीं है।

शेष पृष्ठ ६ देखिये

मनु का विरोध क्यों?

माम चन्द्र रिवाड़िया

मनु के बारे में कहा जाता है कि Manu is the earlier law giver of India. अनुवाद का सही अर्थ है 'गुण-कर्म योग्यता के श्रेष्ठ मूल्यों के महत्त्व पर आधारित विचार धारा लेकिन जन्मना जाति व्यवस्था से हमारे समाज और राष्ट्र का बहुत पतन हुआ और भविष्य के लिए भी यह घातक है।

आर्य समाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द ने वेदों के बाद मनुस्मृति को ही धर्म में प्रमाण माना है। तत्कालीन राष्ट्रपति डा. आर. वेंकटरमन डा. भीमराव अम्बेडकर को भारत का आधुनिक मनु शब्द से गौरवान्वित किया था। डा. अम्बेडकर का दुर्भाग्य था कि वे संस्कृत के ज्ञाता नहीं थे। उन्होंने विदेशो द्वारा अंग्रेजी में छपे तथा सारण आदि पांगा पण्डितो द्वारा रचित मनुस्मृति पढ़ी थी इसलिए वे वेद सम्मत को पढ़ नहीं पाये। जर्मन विद्वान् प्रसिद्ध दार्शनिक फिडरिच ने वेदों पर आधारित मनुस्मृति पढ़ी थी उसके आधार पर उन्होंने ने कहा था ''मनुस्मृति बाईबल से उत्तम ग्रन्थ है'' बालिद्वीप, वर्मा, थाईलैंड, कम्बोडिया, इन्डोनेशिया, लंका तथा नेपाल आदि देशों से प्राप्त शिला लेखों और उनके प्राचीन इतिहास से ज्ञात होता है कि वहाँ मनु के धर्मशास्त्र पर आधारित कर्मानुसार वर्ण व्यवस्था रही है उन्ही के अनुसार न्याय होता है। फिलीपीन मानते है कि उनकी आचारसंहिता के निर्माण में मनु और लाओत्से की स्मृति का प्रमुख योगदान रहा है, इस कारण वहाँ की विधानसभा के द्वारा पर इन दोनों की मूर्तियाँ स्थापित हैं। इन देशों के शिलालेखों और इतिहास से इस बात की पुष्टि होती है कि ईरानवासी आज भी मनुस्मृति के कारण अपने आपको आर्यवंशी मानते है। कम्बोडिया के निवासी अपने आपको मनु की सन्तान कहते हैं।

बड़े दु:ख के साथ लिखना पड़ रहा है कि मनु को सनातनी पोंगा पण्डितों ने यह भ्रम फैलाया कि मनुस्मृति में हजारों श्लोक वेद विरूद्ध है और दलितो पर अनेक श्लोक लिखकर अपमानित किया है जिसके कारण महान् विद्वान् तथा संविधान निर्माता डॉ. भीमराव अम्बेडकर इनके झाँसे में आ गये और उन्होंने अपने हजारों अनुयायियों की उपस्थिति में मनुस्मृति को फाड़ा और जलाया और हिंदू धर्म से अलग हो बोद्ध धर्म अपनाया।

मनुस्मृति में वर्णव्यवस्था में वर्णपरिवर्तन का विधान है। यदि ब्राह्मण कुल में जन्मा व्यक्ति व्यभिचारी, शराबी, जुवारी है तो वह शूद्र कहलायेगा और शूद्र कुल में जन्मा व्यक्ति यज्ञ करता है, गुरुवान है तो वह ब्राह्मण कहलायेगा। ब्राह्मण तामड्गति मनु कहते है:-

शूद्रो ब्राह्मणतां एति ब्राह्मणस्चौति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातं एवं तु विधाद्वैश्यात्तथैव च।।

मनु. १०.६५।।

अर्थात गुण-कर्म की योग्यता के आधार पर ब्राह्मण शूद्र बन जाता है। और शूद्र ब्राह्मण बन जाता है। इसी प्रकार क्षत्रियों और वैश्यों में भी वर्ण परिवर्तन हो जाता है। महाभारत काल में पूर्णरूप से वर्णव्यवस्था थी। महाभारत युद्ध के बाद वर्णव्यवस्था समाप्त हो गई। जिसका देश और संसार को बहुत नुकसान हो रहा है।

पोंगा पण्डित द्वारा गढ़े हुए श्लोकों के माध्यम से दलित तथा स्त्रियों पर जुल्म करवाते है जबकि वेद आधारित मनुमहाराज स्त्रियों के बारे में कहते है।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफला: क्रिया।।

मनु ३.५६ ।।

अर्थात् जिस परिवार में नारियों का आदर-सन्मान होता है, वहीं देवता निवास करते है और जहाँ इनका अपमान होता है, वहाँ उनकी सब क्रियाएं निष्फल हो जाती है। शूद्रों के लिए जो कठोर दण्डो का विधान मिलता है वह इन पोंगा पण्डितों की देन है। मनु कहते हैं जितना बड़ा विद्वान् उतना कठोर दण्ड और जितना कम बुद्धिवाला उतना कम दण्ड का मनुस्मृति में वर्णन है जो वेदानुकूल है।

महर्षि मनु और डॉ. अम्बेडकर : भारतीय लेखकों में मनु के विरोध में प्रमुख रूप से डॉ. भीमराव आम्बेडकर जी का नाम विशेष तौर पर लिया जाता है, जिसका मुख्य कारण रहा है कि पोंगा पण्डितों ने अनेक ऐसे श्लोको की भरमार मनुस्मृति में कर दी है जिसको पढ़कर उन्हें अत्यन्त पीड़ा हुई थी जिसके कारण उन्होंने मनुस्मृति को जलाया ही नहीं बल्कि मनु की कटु शब्दो मे आलोचना की और अपने अनुयाईयों को आदेश दिया कि वे जहाँ भी मनुस्मृति का प्रचार कोई करे उसको विरोध करें। डॉ. अम्बेडकर जी ने संविधान मे प्रावधान किया है कि अनुचित निर्णय से निरपराध को दण्ड नहीं मिलना चाहिये चाये अपराधी मुक्त हो जाए। लेकिन डॉ. साहब ने मनु पर जन्मजात आधारित सामाजिक व्यवस्थाओं को थोपकर अनावश्यक रूप से उन्हे दोषी करार दे दिया जो वास्तव में अनुचित था। उन्होंने मनु सम्बन्धी समस्त अध्ययन अंग्रेजी भाषा में लिखी आलोचनाओं के माध्यम से ग्रहण किया है। इसी संदर्भ में डॉ. अम्बेडकर यह कहते है कि मैं मानता हूँ कि स्वामी दयानन्द ने वर्ण के वैदिक सिद्धान्त की जो व्याख्या की है वह गुण-कर्म स्वभाव पर आधारित है जन्म के आधार पर नहीं। डा. अम्बेडकर वर्तमान जाति-पाति रहित संविधान के निर्माता है। वेदों मे जातिव्यवस्था का नामोनिशान तक नही है। यहाँ तक कि महात्मा बुद्ध ने वेदों की प्रशंसा करते हुए धर्म में वेदों के महत्व की दर्शाया है। असली मनुस्मृति में कहा गया है द्विज वर्ण के व्यक्ति वृद्ध शूद्र को पहले सम्मान दे। यह सम्मान पहले तीन वर्गों में किसी को नहीं दिया गया है। मनु ने शूद्र सहित चारो वर्गो को वर्ण माना है जबकि पोंगा पण्डितों ने इससे अलग विचार श्लोकों द्वारा मनुस्मृति में भर दिये है।

मनु ने पुत्र-पुत्री को समान माना है। जिस प्रकार पिता की जायदाद में पुत्र का अधिकार है उतना ही पुत्री का भी अधिकार है। मनु ने विधवा विवाह का समर्थन किया है और बाल-विवाह का घोर विरोध किया है। मनु कहते है कि स्त्री का जीवन पर्यन्त अविवाहित रहना श्रेयस्कर है, किन्तु गुणहीन दुष्ट पुरुष से विवाह नही करना चाहिए। मनु कहते है कि वैदिक काल में स्त्रियों को वेद पढ़ना और यज्ञ आदि के सभी अधिकार प्राप्त थे। वे ब्रह्मा के पद को सुशोभित करती थी।

जो न्यायपूर्ण, श्रेष्ठ और गुण-कर्म योग्यता पर आधारित विधान है, वे मनु के मौलिक श्लोक है, जो उनके विरूद्ध, अन्याय और पक्षपातपूर्ण है, वे प्रक्षिप्त हैं अर्थात् समय-समय पर बाद में लोगों ने रचकर मनुस्मृति में मिला दिये है।

शेष पृष्ठ ६ देखिये

समीक्षा–भागवत दर्पण

डा. सोमदेव शास्त्री के नेतृत्व में वैदिक मिशन मुम्बई विगत १० वर्षों से वैदिक मान्यताओं का प्रचार प्रसार कर रहा है। अपने अनेक कार्यक्रमों के अतिरिक्त प्रति वर्ष कोइ न कोइ पुस्तक का प्रकाशन करता रहा है। अब तक हमने वेदों में सामाजिक संगठन, नारी महिमा, ब्रह्मवेद है अथर्ववेद, अथर्ववेद-परिशीलन, यजुष-साम विमर्श, चतुर्वेद परिचय, षड्दर्शन परिचय, रामायण सन्देश, वेद-वेदान्त ज्योतिष आदि अनेक आर्ष ग्रन्थों का प्रकाशन किया है। इस वर्ष इस मिशन ने भागवत दर्पण पुस्तक प्रकाशित की है।

पौराणिकों के १८ पुराणों में एक श्रीमद्-भागवतम् पुराण भी है जिसमें १० स्कन्ध, २९ अध्याय ४५४६ श्लोक हैं। भागवत पुराण में श्री कृष्ण की मनगढंत व अनर्गल रास लीलाओं का आलंकारिक वर्णन है । इसमें गोपी रास, राधा प्रेम प्रसंग, कुब्जा समागम, पूतना वध, गोवर्धन पर्वत कथा, कालिया नाग दमन, बकासुर, अधासुर, मत्स्य अवतार आदि झूठी कहानियां व गप्पें भरी पड़ी है जिसका सच्चाई से तथा विज्ञान से कोई लेना देना नहीं दिखता।

इस पाखण्डी पुराण को पढ़कर स्वामी दयानन्द जी ने अपने ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' में बड़े दुःख व कष्ट के साथ लिखा था देखो श्री कृष्ण का इतिहास महाभारत में अति उत्तम है। इस भागवत वाले ने उनपर अनुचित मनमाने दोष लगाएं हैं। जो यह भागवत न होता तो श्री कृष्ण के सदृश महात्माओं की झूठी निन्दा न होती।

डा. सोमदेव शास्त्री विचरचित यह भागवत दर्पण पुस्तक उन पौराणिकों को सही दर्पण दिखाने का काम करेगी और उनकी झूठी किस्से कहानियों का पर्दाफाश करेगी।

संदीप आर्य

मंत्री-- वैदिक मिशन मुंबई, मो. ९९६९०३७८३७

पृष्ठ ६ से चालू....

अन्त मै वैदिक विद्वानों संन्यासियों, आर्य समाजों और आर्य समाज से सम्बन्धित शिक्षण संस्थाओं और गुरुकुलों के आचार्यों से नम्र निवेदन करना, चाहता हूँ कि वे मनु द्वारा मौलिक श्लोकों का अर्थ सहित दलितों-पिछड़े वर्गों और आदिवासियों में सरल भाषा में एक लेख लिख कर लाखों लोगों में वितरित करें और पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित करें ताकि पोंगा पण्डितों को जनता में पोल खोली जा सकें।

संस्थापक महामंत्री

आर्य समाज टैगोर गार्डन नई दिल्ली. ९२१२००३१६२

संरक्षक अ.भा. खटीक

समाज (रजि.) ४/सी-२३ टैंगो गार्डन नई दिल्ली-११००२७

एक विचार

देश में इतना अन्धविश्वास फैल गया है कि अच्छे बुरे में भेद करना मुशकिल हो गया है। अच्छे बुरे साधुओं को पहचान ने में भूल हो जाती है, जब पोल खुल जाती है तब पता चलता है कि वह कितना पापी, दुष्ट और जनता का शोषण करता रहा है। उदाहरण के तौर पर आशाराम बापू, रामपाल, सुरेन्द्र दीक्षित आदि। हम सभी धर्मो के क्षेष्ठ व्यक्तियों को सड़को पर आकर ऊन व्यक्तियों के विराध प्रदर्शन करना चाहिये ताकि भोली-भाली जनता को उनसे बचाया जा सके।

मामचन्द रिवाडिया

पृष्ठ ४ से चालू....

जैसे एक व्यक्ति इतना योगी, तपस्वी व पहुँचा हुआ सन्यासी है जो एक समय में ही मुम्बई, कलकत्ता, मद्रास व दिल्ली दिखाई देता है। यह बात प्रवृत्ति विरूद्ध है। एक व्यक्ति एक समयमें एक ही जगह दिखाई देगा। मनुष्यों द्वारा चलाए गये मत व पंथों में अपना चमत्कार दिखाने के लिए प्रकृति विरूद्ध बातें बतलाते हैं जैसे ईसाई लोग कहते हैं कि ईशा की शरण में आ जाओ तुम्हारे सब पाप धुल जायेंगे और मोक्ष के अधिकारी बन जायेंगे। मुस्लिम भाई कहते हैं कि मोहम्मद साहब ने चिटली उगली से चान्द के दो टुकडे कर दिये पौराणिक भाई इस मामले में सब से आगे हैं। वे तो कहते हैं कि हनुमान जीने बचपन में सूर्य को मुख में रख लिया, कुन्ती को कर्ण कान से हुआ था, भागवान कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को बीचकी अँगली से उठा लिया। यह सब काम प्रकृति विरूद्ध है इसलिये यह सब असत्य है। इसलिए यह सब अन्ध विश्वास है। वैदिक धर्म इन सब को नहीं मानता । धर्मकेवल बुद्धि, तर्क व विज्ञान समूह हैं, उसी ज्ञान को मानता है जिसे हर व्यक्ति को बोलना चाहीए जो यथार्थ है।

गोविन्द राम आर्य अण्ड सन्स,

१८० महात्मा गान्धी रोड, (दोतल्ला) कलकत्ता-७०० ००७

मो.: ९९३०१३५७९४ फोन : २२१८३८२५ (०३३)

हम प्राण-अपान की साधना से सुरूप बनें

डॉ. अशोक आर्य

ऋग्वेद के प्रथम मण्डल का दूसरा सूक्त मित्रावरूणा की आराधना के साथ समाप्त होता है। मित्रा से भाव प्राण अथवा प्राणशक्ति तथा वरूणा से भाव अपानशक्ति होने से यह सूक्त प्राण अपान अर्थात प्राणायाम अर्थात सांस की क्रिया से सम्बन्ध रखता है तथा नित्य प्राणायाम करने की प्रेरणा देते हुए समाप्त होता है।

जिस मनुष्य में प्राणशक्ति है, वह ही जीवित माना जाता है किन्तु मन्त्र की भावना है कि प्राणशक्ति होने पर मनुष्य मित्र व स्नेह की वृत्ति वाला होता है। यह सत्य भी है, जिसमें जीवन है, वह स्नेह भी करेगा तथा मित्रता भी करेगा किन्तु यह जीवनीय शक्ति ही नहीं है केवल शरीर मात्र है, लाश मात्र है तो वह तो किसी स्नेहिल व्यवहार से ही कर सकता है तथा न ही किसी से मैत्री की ही क्षमता उस में होती है।

जब मानव की अपान शक्ति ठीक से कार्य करती है तो मानव के अन्दर से दूसरों के प्रति जो द्वेष की भावना होती है, वह उससे निकल कर दूर हो जाती है। कोष्ठ बद्धता की वृति वाले लोग ईर्ष्यालु, द्वेषी तथा चिडचिडे स्वभाव वाले हो जाते हैं। साधारण भाषा में कोष्ठबद्धता को हम कब्ज के रूप में जानते हैं। जिस व्यक्ति को कब्ज होती है, उसका व्यवहार इन सब दोषों को अपने अन्दर स्मेट लेता है। न तो उसे भूख ही लगती है न ही बातचीत अथवा लोक व्यवहार की कोई कृति वह कर पाता है। बस प्रत्येक क्षण उसके अन्दर दूसरों से द्वेष, बात बात पर चिढना तथा ईर्ष्या की सी भावना उसमें दिखाई देती रहती है। जब उसकी यह कब्ज दूर हो जाती है तो हंस मुख चेहरे के साथ दूसरों का शुभचिन्तक हो कर खुश रहता है।

अत: जब मानव निरन्तर अपने प्राण तथा अपान की साधना करता है तो उसमें शुभ वृत्तियों का उदय होता है। अब वह सब का भला चाहने वाला बन जाता है। स्वयं भी खुश रहता है तथा अन्यों के लिए भी खुशी का कारण बनता है। इस लिए प्राणापान की निरन्तर साधना से मानव में शुभ वृतियों का उदय होता है।

प्राणापान साधना के जो फल हमें दिखाई देते हैं, विभिन्न मन्त्रों के माध्यम से वह इस प्रकार हैं:-

१. प्राणापान की साधना से हमारे अन्दर की सब अशुभ वासनाएँ, अशुभ वृत्तियाँ दूर हो जाती हैं तथा हम स्वच्छ, पवित्र हो जाते हैं।
२. पवित्र मानव ही प्रभु से साक्षात्कार करने के योग्य बनता है। अत: अशुभ वृतियों के दूर होने से उसे प्रभु से साक्षात् करने की शक्ति आ जाती है।
३. पवित्र व्यक्ति अपनी पवित्रता को बनाए रखने के लिए व्यर्थ के कार्यों में अपना समय नष्ट नहीं करना चाहता, ऐसा करने से तो उसकी पवित्रता के ही समाप्त होने का खतरा बना रहता है। जब वह अपने समय को व्यर्थ के कार्यों में नष्ट नहीं करता तो इस समय का कहीं तो सदुपयोग करना ही होता है। अत: वह दिव्यगुणों को पाने व बढ़ाने में इस समय का सदुपयोग करता है, जिससे उसमें दिव्यगुण का और भी आधिक्य हो जाता है।
४. अब उसको इन दिव्यगुणों की प्राप्ति की एक ललक सी ही लग जाती है, वह इन्हें पाने का ओर अधिक यत्न करना चाहता है ताकि वह निरन्तर अपने इन गुणों को बढाता रह सके। इस निमित्त वह ज्ञान पाना चाहता है, सरस्वती का आराधक बन जाता है। अब वह ज्ञान का सच्चा पुजारी बन जाता है तथा अपने जो भी कार्य वह करता है, वह उसके ज्ञान पाने के साधक ही होते हैं।
५. जब वह सरस्वती की निरन्तर आराधना करने लगता है तथा वह उस ज्ञान स्वरुप परम ऐश्वर्य से युक्त प्रभु की उपासना करता है, उससे समीपता बनाता है, उसके पास बैठने लगता है तो वह सुरूप हो जाता है, सुरूपता के सब गुण उस में आ जाते हैं।

सूक्त संख्या तीन में बताए कार्यों को कर सके। अत: आओ हम ऋग्वेद के प्रथम मण्ड्ल के इस सूक्त तीन पर चिन्तन करें, विचार करे इसका स्वाध्याय करें।

पता- पाकेट १ पलोंट ६१ रामप्रस्थ ग्रीन से. ७
वैशाली २०१०१० गाजियाबाद उ.प्र.
चूलभाष : ०९७१८५२८०६८

|| धर्म दर्शन संस्कृति ||

धर्म दर्शन संस्कृति की गर नहीं रक्षा करोगे,
तो बताओ मित्र मेरे, फिर तुम क्या करोगे।।
धर्म, जो धारण किये है मनुजता का बोझ सारी,
धर्म, जिसके ही लिए है, सृष्टि का यह सरण जारी।
वह तुम्हें रक्षित करेगा, तुम अगर रक्षा करोगे ।।१।।

दर्शनों ने ही सदा दर्शन कराये आत्मा के,
सत्य मानो दिव्य चक्षु हैं यही जीवात्मा के।
आत्म साक्षात्कार होगा यदि इन्हें धारण करोगे।।२।।

संस्कृति सम्यक् कृति है मानवी संवेदना की,
पर इसे भूले हुए सब, बात है यह वेदना की।
विश्वगुरु गरिमा मिलेगी, यदि इसे धारण करोगे।।३।।

धर्म दर्शन संस्कृति की गर नहीं रक्षा करोगे,
तो बताओ मित्र मेरे
फिर भला तुम क्या करोगे?

– प० नागेश शर्मा
आर्य समाज मुलुंड

संसार में शान्ति प्राप्त करने का एक मात्र उपाय वैदिक धर्म–एवं मनुभर्व जनया देव्य जनम। ऋ: वैदिक धर्म आपनावो और मनुष्य बनो, दिव्य सन्तानो को जन्म दो

पं. उम्मेद सिंह विशारद
मो. : ९४११५१२०१९
९५५७६४१८००

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती जी द्वारा रचित संस्कार विधि जो युग निर्माण में महत्त्वपूर्ण है, उसके ग्रहाश्रम प्रकरण में वैदिक धर्म के विषय में लिखते है कि:-

न जातु कामात्र भयान्त लोभाद। धर्म त्ययेज्जीवितस्यपि हेतो:।

धर्मो नित्य: सुख दु:खेत्व नित्ये, जीवो नित्यो हेतु स्वं त्वनित्य।। महाभारते-।।
अर्थात: मनुष्यों को योग्य है कि काम से, अर्थात झूठ से कामना सिद्ध होने के कारण से वा निन्दा स्तुति आदि के भय से भी धर्म का त्याग कभी न करे और न लोभ से। चाहे झूठ अधर्म से चक्रवर्ती राज्य भी मिलता हो तथापि धर्म को छोडकर चक्रवर्ती राज्य को भी ग्रहण न करें। चाहे भोजन हादन जल-पान आदि को जीविका भी अधर्म से ही सके वा प्राण जाते हो परन्तु जीविका के लिये धर्म को कभी न छोडे। क्योंकि जीव व धर्म तो नित्य है तथा सुख द:ख दोनो अनित्य हैं अनित्य के लिये नित्य छोड़ना अतीव दुष्ट कर्म हैं इस धर्म के हेतु कि जिस शरीर आदि से धर्म होता है वह भी अनित्य हैं धन्य वे मनुष्य है जो अनित्य शरीर और सुख दु:खादि के व्यवहार से वर्तमान होकर नित्य धर्म का त्याग कभी नही करते।
संस्कार विधि-।।

धर्म एवं हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षित:-

तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मानो धर्मो हतो ऽ वधीत:।। महाभारते-।।

अथार्त: जो पुरुष धर्म का नाश करता है, उसका नाश धर्म कर देता है, और जो धर्म की रक्षा करता है, उसकी धर्म भी रक्षा करता हैं इसलिए मारा हुआ धर्म कभी हमें भी न मार डाले, इस भय से धर्म का हनन अर्थात त्याग कभी न करना चाहिए।

यत्र धर्मो हव्यधर्मेण सत्य यत्रानृतेन च-।

व्यन्ते प्रेक्षमाणानं हतास्तत्र सभासदा- ।। मनु-।

अर्थात: जिस सभा में बैंठे हुए सभासदों के सामने अधर्म से धर्म और झूठ से सत्य का हनन होता है उस सभा के सब सभासद मरे से ही है।

महर्षि दयानन्द जी संस्कार विधि में ग्रहाश्रम प्रकरण में लिखते है।

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा न ते येन वदन्ति धर्मम।

नासौ धर्मो यत्र न:सत्यमस्ति, न तत सत्य यच्छलेनाभ्यु पेतम-।। महाभारते
अर्थात: वह सभा व परिवार नही है, जिसमें वृद्ध पुरुष न होवे। वे वृद्ध नहीं है जो धर्म की बात नहीं बोलते। वह धर्म नहीं है, जिसमें सत्य नहीं है और न व सत्य है जो छल से युक्त हो।

स्वाध्यायेन जपैहोंमेस्त्रैविधेनेज्यया सुतै:।

महायज्ञैश्च यज्ञेश्य ब्राहीयं क्रियते तनु:।। (मनु)
अर्थात: मनुष्य को चाहिए कि धर्म से वेदादि शास्त्रो का पठन-पाठन गायत्री-प्रणवादि का अर्थ विचार, ध्यान, अग्नि होत्रादि होम, कर्मोपासना ज्ञान-विद्या, पौर्णमास्यादि, इष्टि, पन्चमहायज्ञ, अग्निष्टोम आदि नयाय से राज्यपालन, सत्योपदेश और योगाभ्यासदि उत्तम कर्मो से इस शरीर को अर्थात ब्रहम्सम्बन्धी करें।

सत्यार्थ प्रकाश से: मनुष्य उसी को कहना कि मनन शील होकर स्वात्मवत अन्यो के सुख: दुख: और हानि लाभ को समझे। अन्यायकारी बलवान से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्व सामथर्य से धर्मात्माओं की चाहे व महाअनाथ निर्बल और गुण रहित क्यों न हो रक्षा उन्नति और प्रियाचरण सदा किया करे। अर्थात जहां तक हो सके वहां तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करें। इस काम में चाहे प्राण ही भले चले जाये, परन्तु मनुष्यपन रुप धर्म से प्रथक कभी न हो।

मानव के नव निर्माण का आधार वैदिक सोलह संस्कार है।

संस्कार का अर्थ है किसी वस्तु के रूप को बदल देना वैदिक संस्कृति में मानव जीवन निर्माण के लिये सोलह संस्कारो का विधान है। इसका अर्थ है कि जन्म से सोलह वार मानव को बदलने की प्रक्रिया है। जैसे लोहार लोहे को अग्नि में डालकर अपने अनुसार वस्तु का संस्कार देता है। उसी प्रकार बालक के उत्पन्न होने से पहले और बाद में संस्कारो की भट्टी मे डाल कर दुगुर्ण निकाल कर सदगुण बनाने की प्रक्रिया है।

चरकऋषि ने कहा है: संस्कारो हि गुणान्तराधानमुच्यते

अर्थात संस्कार से पूर्व जन्म के दुर्गणो को हटा कर सदगुणो का आधान कर देने का विधान हैं बालक का जन्म होता है तो वह दो संस्कारों को लेकर चलता है, एक जन्म जन्मान्तरों के संस्कार दूसरा माता पिता के संस्कारो का वंश परम्परा से करता है। वैदिक संस्कार व संस्कृति की योजना से हीं मानव का नव आदर्श संस्कारिक निर्माण होता है।

यह आवश्यक है– उपेक्षणीय नही

श्रध्येय पाठक गण: आज समाज सुधारको को आज मानव जगत मे हो रहे कुसंस्कारो और अत्यधिक पाश्चात्य सभ्यता के वातावरण को देख कर चिन्तित है, आज परिवार टूट रहे हैं, स्वार्थ और अत्यधिक सुख पाने की लालसा में माता-पिता व अन्य बुजुर्गो की अवेहलना हो रही है। कितना सुन्दर और संस्कारिक भारतीयों का अतीत था, सभी भारतवासी सुख उठाते रहे और भारत धरती का स्वॅग धाम बना रहा। परन्तु आज से छ हजार वर्ष व्यतीत हुए कि भारतीयों के परिवार वैदिक शिक्षा को छोड़कर अवैदिक शिक्षा पर चलकर निरन्तर धार्मिक सामाजिक राजनैतिक के उच्च आदर्शो को छोडते जा रहे है।

युग निर्माण के लिये आवश्यक प्रयत्न करना इस लिये उचित है कि जिस दुनिया में हम रहते है, यदि वह कुसंस्कारी व दूषित रही तो अपने लिये सदा संकट और चिन्ता की स्थिति बनी रहेगी। यदि चारों ओर विवेकहीन व दुष्टतापूर्ण वातावरण बना हुआ हो तो अपने सत्य आदर्श व यत्न निरर्थक चले जाते हैं। वातावरण में फैली बुराइयों और विचार धारा हवा और सर्दी गर्मी की तरह अपने ऊपर आक्रमण करती है। इसलिये आवश्यक है कि बुराइयों से सदैव संघर्ष करना चाहिए। समाज में कुरुतियां फैली हों और हम चुप बैठे रहे तो यह अविवेक पूर्ण होगा। चोर, डाकू-दृष्ट, दुराचारी, शरारती और अन्धविश्वासी लोगो के बीच रहकर कोइ भी व्यक्ति अपनी सज्जनता व आदर्शो की रक्षा नहीं कर सकता है। किन्तु श्रेष्ठ मनुष्यों का उत्तरदायित्व है कि वेदानुकूल संस्कार व संस्कृति के प्रचार प्रसार और उसको अक्षुण्ण रखने के लिये सदैव तत्पर रहे।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी कहते है कि हे मनुष्यों तुम ईश्वर द्वारा प्रदत, अग्नि, वायु-जल-वनस्पति व अन्य दिव्य साधनो द्वारा एक क्षण भी जीवित नही रह सकते हो तो ईश्वर द्वारा प्रदत्त वैदिक धर्म पर क्यों नहीं चलते हो यही तुम्हारी अशान्ति व दुखों का कारण यही है।

❒❒❒

यक्ष युधिष्ठिर संवाद

युधिष्ठिर बोले– धन्य पुरुषों में दक्षता ही उत्तम गुण है। धनों में शास्त्र-ज्ञान प्रधान है। लाभों में आरोग्य लाभ श्रेष्ठ है और सुखों में सन्तोष ही सबसे उत्तम सुख है।

यक्ष उवाच

कश्च धर्म: परो लोके कश्च धर्म: सदाफल:।
कि नियम्य न शोचन्ति कैश्च सन्धिर्न जीर्यते ।।४२।।

यक्ष ने पूछा– लोक में श्रेष्ठ धर्म क्या है? नित्य फल देनेवाला धर्म क्या है? किसको वश में रखने से मनूष्य शोक नहीं करते? कितने साथ की हुई मित्रता नष्ट नहीं होती?

युधिष्ठिर उवाच

आनृशंस्यं परी धर्मस्त्रयीधर्म: सदाफल:।
मनो यम्य न शोचन्ति सन्धि: सद्भिर्न जीर्यते ।।४३।।

युधिष्ठिर बोले– संसार में दया श्रेष्ठ धर्म है। वेदोक्त-धर्म नित्य फल देनेवाला है। मन को वश में रखने से मनुष्य शोक नहीं करते और सत्पुरुषों के साथ की हुई मित्रता नष्ट नहीं होती।

यक्ष उवाच

किंनु हित्वा प्रियो भवेत्किं नु हित्वा न शोचति।
किं नु हित्वार्थवान् भवेत्किं नु हित्वा सुखी भवेत् ।।४४।।

यक्ष ने पूछा– किस वस्तु को त्यागकर मनुष्य प्रिय होता है? किस वस्तु को त्यागकर मनुष्य शोक नहीं करता? किसको त्यागकर वह अर्थवान् होता है और किसको त्यागकर सुखी होता है?

युधिष्ठिर उवाच

मानं हित्वा प्रियो भवेत्क्रोधं हित्वा न शोचति।
कामं हित्वार्थवान् भवेल्लोभं हित्वा सुखी भवेत् ।।४५।।

युधिष्ठिर बोले– मान को त्याग देने पर मनुष्य प्रिय होता है, क्रोध को त्यागने पर शोक नहीं करता, काम को त्यागकर वह अर्थवान् होता है तथा लोभ को त्यागकर सुखी होता है।

यक्ष उवाच

किमर्थ ब्राह्मणे दानं किमर्थ नटनर्तके।
किमर्थ चैव भृत्येषु किमर्थ चैव राजसु ।।४६।।

यक्ष ने पूछा– ब्राह्मण को दान क्यों दिया जाता है? नट और नर्तकों को दान क्यों देते है? सेवकों को दान देने का क्या प्रयोजन है? राजाओं को दान क्यों दिया जाता है?

युधिष्ठिर उवाच

धर्मार्थ ब्राह्मणे दानं यशोऽर्थ नटनर्तके।
भृत्येषु भरणार्थं वै भयार्थं चैव राजसु ।।४७।।

युधिष्ठिर बोले– ब्राह्मणों को धर्म के लिए दान दिया जाता है, नट-नर्तकों को यश के लिए धन देते हैं, सेवकों को उनके भरण-पोषण के लिए दान=वेतन दिया जाता है और राजाओं को भय के कारण दान-कर देते हैं।

यक्ष उवाच

केन स्विदावृतो लोक: केन स्विन्न प्रकाशते।
केन त्यजति मित्राणि केन स्वर्गं न गच्छति ।।४८।।

यक्ष ने पूछा– जगत् किस वस्तु से ढका हुआ है? किसके कारण वह प्रकाशित नहीं होता? मनुष्य मित्रों को किस लिए त्याग देता है और स्वर्ग में किस कारण नहीं जा पाता?

युधिष्ठिर उवाच

अज्ञानेनावृतो लोकस्तमसा न प्रकाशते।
लोभात्यजति मित्राणि संगातस्वर्गं न गच्छति ।।४९।।

युधिष्ठिर बोले- जगत् अज्ञान से ढका हुआ है, तमोगुण के कारण वह प्रकाशित नहीं होता है। लोभ के कारण मनुष्य मित्रों को त्याग देता है और आसक्ति के कारण स्वर्ग=सुख की स्थिति में नहीं जा पाता।

यक्ष उवाच

मृत: कथं स्यात् पुरुष: कथं राष्ट्रं मृतं भवेत्
दानं मृतं कथं वा स्थात् कथं यज्ञो मृतो भवेत् ।।५०।।

यक्ष ने पूछा– पुरुष किस प्रकार मरा कहा जाता है? राष्ट्र किस प्रकार मर जाता है? दान किस प्रकार मृत हो जाता है? यज्ञ कैसे मृत=नष्ट हो जाता है?

युधिष्ठिर उवाच

मृतो दरिद्र: पुरुषो मृतं राष्ट्रमराजकम्।
मृतमश्रोत्रिये दानं मृतो यज्ञस्त्वदक्षिण: ।।५१।।

युधिष्ठिर बोले– दरिद्र पुरुष मरा हुआ है। राजा से रहित राष्ट्र मर जाता है। अधोश्रित (वेदज्ञानविरहित) ब्राह्मण को दिया गया दान मृत के समान है और दक्षिणारहित यज्ञ नष्ट हो जाता है।

यक्ष उवाच

तप: किं लक्षणं प्रोक्तं को दमश्च प्रकर्तित:।
क्षमा च का परा प्रोक्ता का च ह्री: परिकीर्तिता ।।५२।।

यक्ष ने पूछा– तप का क्या लक्षण बताया गया है? दम किसे कहा गया है? उत्तम क्षमा क्या बताई गई तथा लज्जा किसे कहते हैं?

युधिष्ठिर उवाच

तप: स्वधर्मवर्तित्वं मनसो दमनं दम:।
क्षमा द्वन्द्वसहिष्णुत्वं ह्रीरकार्यनिवर्तनम् ।।५३।।

युधिष्ठिर बोले– अपने धर्म में स्थिर रहना तप है। मन को वश में करने का नाम दम है। सुख दु:ख, लाभ-हानि, जय-पराजय, मान-अपमान, स्तुति-निन्दा, गरमी-सरदी आदि द्वन्द्वों को सहन करना क्षमा है और न करने योग्य कामों से दूर रहना लज्जा है।

यक्ष उवाच

किंज्ञानं प्रोच्यते राजन् क:शमश्च प्रकीर्तित:।
दया का च परा प्रोक्ता किं चार्जव मुदाहृतम् ।।५४।।

यक्ष ने पूछा– राजन्! ज्ञान किसे कहते हैं ? शम क्या कहलाता है? उत्तम दया किसका नाम है और आर्जव=सरलता किसे कहते हैं?

युधिष्ठिर उवाच

ज्ञानं तत्वार्थसम्बोध: शमश्चितप्रशान्तता।
दया सर्वसुवैषित्वमार्जवं समचित्तता ।।५५।।

युधिष्ठिर बोले– परमात्म-तत्त्व का यथार्थ बोध ही ज्ञान है, चित्त की शान्ति ही शम है, सबके सुख की इच्छा रखना उत्तम दया है और समचित्त होना आर्जव=सरलता है।

यक्ष उवाच

क: शत्रुर्दुर्जय: पुंसां कश्च व्याधिरनन्तक:।
कीदृशश्च स्मृत: साधुरसाधु: कीदृश: स्मृत: ।।५६।।

यक्ष ने पूछा– मनुष्यों का दुर्जय शत्रु कौन-सा है? अनन्त व्याधि क्या है? साधु कौन माना जाता है और असाधु किसे कहते हैं?

युधिष्ठिर उवाच

क्रोध: सुदुर्जय: **शत्रुर्लोभो व्याधिरनन्तक:।**
सर्वभूतहित: **साधुरसाधुर्निर्दय स्मृत:।।५७।।**

युधिष्ठिर **बोले–** क्रोध दुर्जय शत्रु है। लोभ अनन्त व्याधि है। जो समस्त प्राणियों का हित करनेवाला है, वही साधू है, जो निर्दय (दयाहीन) है उसे ही असाधु माना गया है।

यक्ष उवाच

को मोह:प्रोच्यते राजन् कश्च मान: प्रकीर्तित:।
किमालस्यं च विज्ञेयं कश्च शोक: प्रकीर्तित: ।।५८।।

यक्ष ने पूछा– राजन्! मोह किसे कहते हैं? मान क्या कहलाता है? आलस्य किसे जानना चाहिए और शोक किसे कहते हैं?

युधिष्ठिर उवाच

मोहो हि धर्ममूढत्वं मानस्त्वात्माभिमानिता।
धर्मनिष्क्रियताऽऽलस्यं शोकरस्त्वज्ञानमुच्यते।।५९।।

युधिष्ठिर बोले– धर्ममूढता ही मोह है, आत्मा अभिमान ही मान है। धर्म का पालन न करना ही आलस्य है और अज्ञान को ही शोक कहते हैं।

यक्ष उवाच

किं स्थैर्यमुषिभि: प्रोक्तं किं च धैर्यमुदाहृतम्।
स्नानं च किं परं प्रोक्तं दानं च किमिहोच्यते ।।६०।।

यक्ष ने पूछा– ऋषियों ने स्थिरता किसे कहा है? धैर्य क्या कहलाता है? परम स्नान किसे कहते हैं और दान किसका नाम है?

युधिष्ठिर उवाच

स्वधर्मे स्थिरता स्थैर्य धैर्यमिन्द्रियनिग्रह:।
स्नानं मनोमलत्यागो दानं वै भूतरक्षणम् ।।६१।।

युधिष्ठिर बोले– अपने धर्म में स्थिर रहना ही स्थिरता है? इन्द्रिय-निग्रह धैर्य है, मानसिक मलों का त्याग करना स्नान है और प्राणियों की रक्षा करना ही दान है।

यक्ष उवाच

क: पण्डित: पुमाञ्ज्ञेयो नास्तिक: कश्च उच्चते।
को मूर्ख: कश्च काम: स्यात् को मत्सर इतिस्मृत: ।।६२।।

यक्ष ने पूछा– किस मनुष्य को पण्डित समझना चाहिए, नास्तिक कौन कहलाता है? मूर्ख कौन है? काम क्या है? मत्सर किसे कहते हैं?

युधिष्ठिर उवाच

धर्मज्ञ: पण्डितो ज्ञेयो नास्तिको मूर्ख उच्चते।
काम: संसारहेतुश्च हृत्तापो मत्सर: स्मृत: ।।६३।।

युधिष्ठिर बोले–धर्मज्ञ को पण्डित समझना चाहिए। वेदनिन्दक नास्तिक ही मूर्ख कहलाता है, जन्म-मरण रूप संसार का कारण जो वासना है, वही काम है तथा हृदय की जलन ही मत्सर है।

यक्ष उवाच

कोऽहंकार इति प्रोक्त: कश्च दम्भ: प्रकीर्तित:।
किंतद् दैवं परं प्रोक्तं किं तत् पैशुन्यमुच्यते ।।६४।।

यक्ष ने पूछा– अहंकार किसे कहते हैं? दम्भ क्या कहलाता है? जिसे परम दैव कहते हैं, वह क्या है और पैशुन्य किसका नाम है?

युधिष्ठिर उवाच

महाऽज्ञानमहङ्कारो दम्भो धर्मध्वजोच्छय:।
दैवं दानफलं प्रोक्तं पैशुन्यं परदूषणम् ।।६५।।

युधिष्ठिर बोले– महा-अज्ञान अहंकार है, अपने को झूठ-मूठ बड़ा धर्मात्मा प्रसिद्ध करना दम्भ है। दान का फल दैव कहलाता है और दूसरों का दोष लगाना पैशुन्य=चुगली है।

यक्ष उवाच

धर्मश्चार्थश्च कामश्च परस्परविरोधिन:।
एषां नित्यविरुद्धानां कथमेकत्र सङ्गम: ।।६६।।

यक्ष ने पूछा– धर्म, अर्थ और काम -ये सब परस्पर-विरोधी हैं। इन नित्य-विरूद्ध पुरुषार्थों का एक स्थान पर संयोग कैसे हो सकता है?

युधिष्ठिर उवाच

यदा धर्मश्च भार्या च परस्परवशानुगौ।
तदा धर्मार्थकामानां त्रयाणामपि सङ्गम: ।।६७।।

युधिष्ठिर बोले– जब धर्म और भार्या- ये दोनों परस्पर-अविरोधी होकर मनुष्य के वश में हो जाते हैं, उस समय धर्म, अर्थ और काम - इन तीनों परस्पर विरोधी पुरुषार्थों का भी एक साथ रहना सहज हो जाता है।

यक्ष उवाच

अक्षयो नरक: केन प्राप्यते भरतर्षभ।
एतन्मे पृच्छत: प्रश्नं तच्छीघ्रं वक्तुमर्हसि ।।६८।।

यक्ष ने पूछा– भरतश्रेष्ठ ! अक्षय नरक= दु:ख किस पुरूष को प्राप्त

होता है? मेरे इस प्रश्न का शीघ्र उत्तर दो।

युधिष्ठिर उवाच

ब्राह्मणं स्वयमाहूय याचमानमकिञ्चनम्।
पश्चान्नास्तीति यो ब्रूयात्सोऽक्षयं नरकं व्रजेत् ।।६९।।

युधिष्ठिर बोले– जो पुरुष भिक्षा माँगनेवाले किसी अकिञ्चन ब्राह्मण को स्वयं बुलाकर फिर उसे 'न' कर देता है, वह अक्षय नरक को प्राप्त होता है।

वेदेषु धर्मशास्त्रेषु मिथ्या यो वै द्विजातिषु।
देवेषु पितृधर्मेषु सोऽक्षयं नरकं व्रजेत् ।।७०।।

जो पुरुष वेद, धर्मशास्त्र, ब्राह्मण, देवता और पितृधर्मों में मिथ्या वुद्धि रखता है अक्षय नरक को प्राप्त होता है।

विद्यमाने धने लोभाद् दानभोगविवर्जित:।
पश्चान्नास्तीति यो ब्रूयात् सोऽक्षयं नरकं व्रजेत् ।।७१।।

धन पास रहते भी जो लोभवश दान और भोग नहीं करता और माँगनेवाले ब्राह्मण आदि तथा न्याययुक्त भोग के लिए स्त्री-पुरुषों को पीछे से यह कह देता है कि मेरे पास देने को कुछ नहीं है, वह भी अक्षय नरक में जाता है।

यक्ष उवाच

राजन् कलेन वृत्तेन स्वाध्यायेन श्रुतेन वा।
ब्राह्मण्यं केन भवति प्रब्रूह्येतत् सुनिश्चितम् ।।।७२।।

यक्ष ने पूछा- राजन् ! कुल, आचार, स्वाध्याय और शास्त्रश्रवण- इसमें से किसके द्वारा ब्राह्मणत्व प्राप्त होता है? यह बात निश्चय करके बताओ।

युधिष्ठिर उवाच

श्रृणु यक्ष कुलं तात न स्वाध्यायो न च श्रुतम्।
कारणं हि द्विजत्वे च वृत्तमेव न संशय: ।।७३।।

युधिष्ठिर बोले– तात यक्ष! सुनो, न तो कुल ब्राह्मणत्व का कारण है, न स्वाध्याय और न शास्त्र श्रवण। ब्राह्मणत्व का हेतु केवल सदाचार ही है, इसमें संशय नहीं है।

वृतं यत्नेन संरक्ष्यं ब्राह्मणेन विशेषत:।
अक्षीणवृत्तो न क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हत: ।।७४।।

ब्राह्मण को तो विशेषरूप से प्रयत्नपूर्वक सदाचार की ही रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि जिसका सदाचार अक्षण्ण है उसका ब्राह्मणत्व भी बना हुआ है और जिसका सदाचार नष्ट हो गया वह तो स्वयं भी नष्ट हो गया।

पठका: पाठकाश्चैव ये चान्ये शास्त्रचिन्तका:।
सर्वे व्यसनिनो मूर्खाय: क्रियावान् स पण्डित: ।।७५।।

पढ़नेवाले, पढ़ानेवाले तथा शास्त्र का विचार करनेवाले- ये सब तो व्यसनी और मूर्ख ही हैं। पण्डित तो वही है, जो अपने शास्त्रोक्त कर्तव्य का पालन करता है।

चतुर्वेदोऽपि दुर्वृत्त: स शूद्रादतिरिच्यते।
योऽग्निहोत्रपरो दान्त: स ब्राह्मण इति स्मृत: ।।७६।।

चारों वेद पढा होने पर भी जो दुराचारी है, वह नीचता में शूद्र से भी बढ़कर है। जो नित्य अग्निहोत्र में तत्पर और जितेन्द्रिय है, वही ब्राह्मण है।

यक्ष उवाच

प्रियवचनवादी किं लभते
विमृशितकार्यकर: किं लभते।
सुबहुमित्रकार: किं लभते
धर्मरत: कथय किं लभते ।।७७।।

यक्ष ने पूछा– बताओ, मधुर बोलनेवाले को क्या मिलता है? सोच-विचारकर काम करनेवाले को क्या प्राप्त होता है? जो बहुत-से मित्र बना लेता है, उसे क्या लाभ होता है? और जो धर्मनिष्ठ है, वह क्या पाता है?

युधिष्ठिर उवाच

प्रियवचनवादी प्रियो भवति
विमशितकार्यकरोऽति जयति।
बहुमित्रकरश्च सुख लभते
यश्च धर्मरत: स गति लभते ।।७८।।

युधिष्ठिर बोले– मधुर वचन बोलनेवाला सबका प्रिय हो जाता है। सोच-विचारकर काम करनेवाले को अधिकतर सफलता मिलती है। बहुत से मित्र बना लेनेवाला सुख से रहता है। जो धर्मनिष्ठ है, वह सद्गति पाता है।

यक्ष उवाच

को मोदते किमाश्चर्यं क: पन्थो: का च वार्तिका।
ममैताँश्चतुर: प्रश्नान् कथयित्वा जलं पिब ।।७६।।

यक्ष ने पूछा– सुखी कौन है ?आश्चर्य क्या है।
जीवनपथ- जीवन का मार्ग क्या है? और वार्ता क्या है? मेरे इन चार प्रश्नों का उत्तर दो और जल पीओ।

युधिष्ठिर उवाच

पञ्चमेऽहनि षष्ठे वा शांक पचति स्वे गृहे।
अनृणी चाप्रवासी च स वारिचर मोदते ।।८०।।

युधिष्ठिर बोले– जलचर यक्ष! जिस पुरुष पर ऋण नहीं है, जो परदेश में नहीं है, ऐसा व्यक्ति पाँचवें या छठे दिन अपने धर के भीतर साग-पात पकाकर खाने पर भी सुखी है।

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यमालयम्।
शेषा: स्थावर मिच्छन्ति किमाश्चर्यमत: परम् ।।८१।।

संसार से प्रतिदिन प्राणी यमलोक में जा रहे हैं परन्तु जो बचे हुए हैं, वे सर्वथा जीने की इच्छा करते हैं, इससे बढ़कर और आश्चर्य क्या हो सकता है?

तर्कोऽप्रतिष्ठ: श्रुतयो विभिन्ना नैको मुनिर्यस्य मतं प्रमाणम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गत: स पन्था:।।८२।।

तर्क की कहीं स्थिति नहीं है, मनुष्यों की श्रुतियाँ भी भिन्न-भिन्न हैं।

एसा कोई एक ऋषि भी नहीं है जिसका मत प्रमाण माना जाए तथा धर्म का तत्त्व हृदयगुहा में निहित (अत्यन्त गूढ) है अत: जिस मार्ग से महापुरूष जाते रहे हैं, वही मार्ग है।

अस्मिन् महोमोहमये कटाहे सूर्याग्निना रात्रिदिवेन्धनेन।
मासर्तुदर्वोपरिघट्टनेन भूतानि काल: पचतीति वार्ता ।।८३।।

संसाररूपी महामोहरूप तैल-भरे कड़ाह में काल समस्त प्राणियों को मास और ऋतु-रूप कलछी से उलट-पुलटकर सूर्यरूप अग्नि और रात-दिनरूप इंधन के द्वारा पका रहा है, यही वार्ता है।

यक्ष उवाच

व्याख्याता मे त्वया प्रश्ना याथातथ्यं परन्तप।
पुरुषं त्विदानीं व्याख्याहि यश्च सर्वधनी नर: ।।८४।।

यक्ष ने पूछा- परंतप! तुमने मेरे समस्त प्रश्नों के उत्तर ठीक-ठीक दे दिये। अब तुम पुरुष की भी व्याख्या कर दो और यह बताओ कि सबसे बड़ा धनी कौन है?

युधिष्ठिर उवाच

दिवं स्पृशति भूमिं च शब्द: पुण्येन कर्मणा।
यावत् स शब्दो भवति तावत् पुरूष उच्चते ।।८५।।

युधिष्ठिर बोले– पुरुष के पुण्य कर्मों की कीर्ति का जय-निनाद जबतक स्वर्ग और भूमि को स्पर्श करता है, तबतक वह पुरुष कहलाता है।

तुल्ये प्रियाप्रिये यस्य सुखदु:खे तथैव च।
अतीतानागते चोभे स वै सर्वधनी नर: ।।८६।।

जो मनुष्य प्रिय-अप्रिय, सुख-दु:ख और भूत-भविष्यत्- इन द्वन्दों में सम (समान) है, वही सबसे बड़ा धनी है।

यक्ष उवाच

व्याख्यात: पुरुषो राजन् यश्च सर्वधनी नर:।
तस्मात् त्वमेकं भ्रातृणां यमिच्छसि स जीवतु ।।८७।।

यक्ष ने कहा– हे राजन्! तुमने पुरुष और सबसे बढ़कर धनी की ठीक-ठीक व्याख्या कर दी, अत: तुम अपने भाइयों में से जिस एक को चाहो, वही जीवित हो सकता है।

युधिष्ठिर उवाच

श्यामो य एष रक्ताक्षो बृहच्छाल इवोत्थित:।
व्यूढोरस्को महाबाहुर्नकुलो यक्ष जीवतु ।।८८।।

युधिष्ठिर बोले– हे यक्ष! यह जो श्यामवर्ण, अरुणनयन, विशाल शाल वृक्ष के समान उन्नत (ऊँचा) और चौड़ी छातीवाला महाबाहु नकुल है, वह जीवित हो जाए।

यक्ष उवाच

प्रियस्ते भीमसेनोऽयमर्जुनो व: परायणम्
स कस्मान्नकुलं राजन् सापत्नं जीमिच्छसि ।।८९।।

यक्ष ने कहा– हे राजन्! यह महाबली भीम तुम्हारा प्रिय है और यह अर्जुन तुम सबका सहारा है। इन्हें छोड़कर तुम सौतेले भाई नकुल को क्यों जिलाना चाहते हो?

युधिष्ठिर उवाच

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षित:।
तस्मा त्यजामि न धर्मं मा नो धर्मो हतोऽवधीत् ।।९०।।

युधिष्ठिर बोले– नष्ट किया हुआ धर्म मनुष्य को मार देता है और रक्षा किया हुआ धर्म मनुष्य की रक्षा करता है, अत: मैं धर्म का त्याग नहीं करता कि कहीं नष्ट होकर वह धर्म मेरा ही नाश न कर दे।

आनृशंस्यं परो धर्म : परमार्थाच्च मे मतम्।
आनशंस्यं चिकीर्षामि नकुलो यक्ष जीवतु ।।९१।।

हे यक्ष! मेरा विचार है कि अनुशंसता= दया और समता ही परम धर्म है। यही सोचकर मैं सबके प्रति दया और समभाव ही रखना चाहता हूँ, अत: नकुल ही जीवित हो जाए।

धर्मशील: सदा राजा इति मां मानवा विदु:।
स्वधर्मान्न चलिष्यामि नकुलो यक्ष जीवतु ।।९२।।

हे यक्ष! लोग मेरे विषय में ऐसा समझते हैं कि राजा युधिष्ठिर धर्मात्मा है, अत: मैं अपने धर्म से विचलित नहीं होऊगा। मेरा भाई नकुल जीवित हो जाए।

कुन्ती चैव तु माद्री च द्वे मार्ये तु पितुर्मम।
उभे सपुत्रे स्यातां वं इति मे धीयते मति: ।।९३।।

मेरे पिता के कुन्ती और माद्री नामक दो भार्याएँ थीं। वे दोनों ही पुत्रवती बनी रहें, यही मेरी स्थिर धारण है।

यथा कुन्ती तथा माद्री विशेषो नास्ति मे तयो:।
मातृभ्यां सममिच्छामि नकुलो यक्ष जीवतु ।।९४।।

हे यक्ष! मेरे लिए जैसी माँ कुन्ती है वैसी ही माद्री, उन दोनों में कोई अन्तर नहीं है। मैं दोनों माताओं के प्रति समभाव ही रखना चाहता हूँ, अत: नकुल ही जीवित हो।

यक्ष उवाच

यस्य तेऽर्थाच्च कामाच्च आनृशंस्यं परं मतम्।
तस्मात् ते भ्रातर: सर्वे जीवन्तु भरतर्षत ।।९५।।

यक्ष ने कहा– हे भरतश्रेष्ठं! तुमने दया और समभाव का अर्थ और काम से भी अधिक आदर किया है, अत: तुम्हारे सभी भाई जीवित हो जाएँ।

वैशम्पायन उवाच

ततस्ते यक्षवचना दुदतिष्ठन्त पाण्डवा:।
क्षुत्पिपासे च सर्वेषां क्षणेन व्यपगच्छताम् ।।९६।।

वैशम्पायनजी कहते हैं- हे राजन् ! तदनत्तर यक्ष के कहते ही सब पाण्डव उठकर खड़े हो गये तथा एक क्षण में ही उनकी भूख और प्यास जाती रही।

इति महाभारते वनपर्वणि चतुर्विशोऽध्याय: ।।२४।।

❑❑❑

महर्षि दयानन्द

शिवनारायण सिंह गौतम

वर्तमान काल के (जिसमें १९वीं और २०वी शताब्दी के विद्वानों का हम समावेश करते हैं।) विद्वानों में जिन्होंने वेदों के यथार्थ स्वरूप को जनता के समक्ष रखने का अत्यन्त अभिनन्दनीय कार्य किया, स्वनामधन्य महर्षि दयानन्द का स्थान सर्वोपरि है। उनके समय में भारत के संस्कृतज्ञ शिक्षित वर्ग में भी वेदों की नितान्त उपेक्षा की जा रही थी तथा उनके अर्थ जानने की ओर बड़े-बड़े पण्डितों का भी ध्यान न था जैसा कि काशी शास्त्रार्थ से स्पष्ट होता है। स्वामी विशुद्वानन्द और बाल शास्त्री जैसे काशी के महापण्डितों को भी वेदों का कुछ भी ज्ञान न था यद्यपि दर्शनशास्त्रों तथा स्मृति आदि ग्रन्थों के अध्ययन में ये लोग अपना अधिक समय लगाते थे। श्री देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने आत्मचरित (Auto-biography) में बंगाल का जो चित्र इस विषय में खींचा है, वही भारत के प्राय: सभी स्थानों का था। वे लिखते हैं-

''वेद बंगाल से प्राय: सर्वथा लुप्त हो चुके थे। न्याय एवं स्मृतिशास्त्र सब पाठशालाओं में पढ़ाये जाते थे और इन शास्त्रों में निपूण पण्डित बंगाल में अनेक थे, किन्तु वेदों की सर्वथा उपेक्षा की जाती थी। देश से ब्राह्मणों का वेदों के पढ़ने का कार्य सर्वथा नष्ट हो चुका था। केवल नाम मात्र के ब्राह्मण रह गये थे जो वैदिक ज्ञान से सर्वथा शून्य थे। वे केवल यज्ञोपतधारी थे। एक-दो विद्वान् ब्राह्मणों को छोड़कर उनको दैनिक संध्यावन्दन के मंत्रों का भी अर्थ नहीं आता था।'' ..... इत्यादि।

1. "The Vedas had become virtually extint in Bengal. Nyay and Smriti Shastra were Studied in every cop (Sanskrit School) and many Pandits versed in these Shastra came forth thence; but the Vedas were totally ignore. The business of the Brahmans, that of learning and teaching the Vedas, had altogether disappeared from the country; there remained Brahmans only in name, bereft of all Vedic Knowledge, bearing the sacred thread alone, with the exception of one or two learned brahman Pandits, they did not even know the meaning of their daily prayers...."

जो थोड़ा बहुत अध्ययन करते थे, वे केवल वेद पाठ सीखने में ही सारा समय लगा देते थे। अर्थ सायणाचार्य महीधरादि तथा तान्त्रिक भाष्यकारों के अनुसार कहीं-कहीं पढ़ाये जाते थे जिनकों पढकर लोगों की वेदों के प्रति रही-सही श्रद्धा भी लुप्त हो जाती थी।

देवेन्द्रनाथ टैगोर ने वेदों के तत्व को जानने की इच्छा से आनन्दचन्द्र, तारकनाथ, वनेश्वर और रामनाथ चार विद्यार्थियों को वेद के अध्ययन के लिये भारत की सांस्कृति राजधानी बनारस भेजा वहाँ से जब वे सायणादि का वेदभाष्य पढ़कर लौटे तो उन्होंने देवेन्द्रनाथ टैगोर से कहा कि 'वेद तो ऊटपटांग, अतंगत एवं अश्लील बातों से भरे हुए हैं...', 'यज्ञों में पशु हिंसा का विधान है...' इत्यादि; जिनके अनुसार श्री देवेन्द्रनाथ टैगोर को यह निश्चय करने को विवश होना पड़ा कि हम वेदों को निर्भ्रान्त ईश्वरीय ज्ञान नहीं मान सकते।

उपर्युक्त चार विधार्थियों की सम्मति पर जिन्होंने सायणादिकृत अशुद्ध भाष्य पढ़कर वेदों के विषय में अयथार्थ भावना बना ली थी, ब्रह्म समाज के नायक देवेन्द्रनाथ टैगोर का वेदों के ईश्वरीयज्ञान विषयक परम्परागत आर्य सिद्धान्त को ठुकरा देना हमारे विचार से ठीक न था। परन्तु केशवचन्द्र सेन जैसे प्रभावशाली और ईसाई विद्या में बाल्यकाल से शिक्षित युवक के अनुरोध पर स्वयं वेदों का विद्वान न होने के कारण श्री देवेन्द्रनाथ टैगोर को इस प्रकार की घोषणा करने को बाधित होना पड़ा।

ब्रह्म समाज के प्रवर्तक श्री राजा राममोहन राय ने यद्यपि वेदों की प्रामाणिकता से कभी इनकार नहीं किया तथापि उनका वेदों से तात्पर्य अधिकतर उपनिषदों से ही प्रतीत होता है जैसे कि प्रो. मैक्समूलर द्वारा 'Biographical Essays' में उल्लिखित निम्न घटना सूचित करती है। वेदों अर्थात संहिताओं के विषय में उनका विचार भी विशेष अच्छा न था। प्रो. मैक्समूलर ने लिखा है-

''जब राजाराम मोहनराय लण्दन में थे तो उन्होंने फ्रेडरिक रोजन को ब्रिटिश म्यूजियम में ऋग्वेद की हस्तलिखित पुस्तक की प्रति करने में व्यस्त पाया तब उनका आश्चर्य हुआ और उन्होंने रोजन को कहा कि वेद अथवा मंत्र संहिताओं पर तुम्हे व्यर्थ समय नष्ट नहीं करना चाहिए किन्तु उपनिषदों का अध्ययन करना चाहिए।''

A.C. Clayton ने 'The Rig-veda and Vedic Religion नामक पुस्तक में इस घटना को प्रो. मैक्समूलर की पुस्तक से उद्धृत करते हुए लिखता है कि-

''मैक्समूलर एक घटना का उल्लेख करता है जिससे उस समय के एक अत्यन्त सुशिक्षित भारतीय विचारक राजा राममोहन राय जैसे लोगों एवं विद्वानों की दृष्टि में और सम्भवत: अन्य भी बहुत से हिन्दुओं के विचार में वेदमंत्रों के महत्व विषयक विचार का पता लगता है।''

अभी हमने देवेन्द्रनाथ टैगोर, केशवचन्द्र सेन तथा राजा राममोहन राय जैसे १९ वीं शताब्दी के जागरूक विद्वानों एवं चिन्तकों के वेद-विषयक विचारों को देखा। उनलोगों की वेद के विषय में अच्छी धारणां नहीं थी। देवेन्द्रनाथ टैगोर ने केशवचन्द्र के प्रभाव से प्रभावित होकर अपने पूर्वोक्त चार शिष्यों के काशी में वेद के अध्ययन तथा अध्ययन के पश्चात् कलकता वापस आने पर शिष्यों द्वारा वेद सम्बन्धी बातों को सुनकर वेद को सत्य विद्या की पुस्तक तथा ईश्वरीय ज्ञान दोनों को अस्वीकार कर दिया। यह वेद की अस्वीकार्य सम्बधी घोषणा देवेन्द्रनाथ टैगोर के द्वारा १८६२ ई. के पहले की गयी थी।

1. "The Raja Ram Mohan Roy was in London and saw Friedrich Roser at the British Museum busily engaged in copying manuscripts of Rig-veda. The Raja Ram was surprised and told Rosr that he ought not to waste his time on the hymns, but that he should study the Upanishads.
   Max Muler's Biographicl Essays, page 39, Quoted By A.C. Clayton in the Rigveda and Vedic Religion, page 121.
2. "Max Muller relates on incident which show the

opinion of the intrinsic value of the hymns of the Vedas held by a highly educated Hindu thinker, and probably by not a few others, at that time."
The Rig-veda and Vedic Religion, Published by the Christian Literature Society for India, London and Madras, 1913.

पुनः १८७० ई. के लगभग वेद के प्रति उनकी धारणा में परिवर्तन आया। इस परिवर्तन का कारण था महर्षि दयानन्द का काशी-शास्त्रार्थ जो दुर्गाकुण्ड के समीप आनन्दबाग नामक स्थान पर १८६९ ई. में हुआ था जिसमें ५०,००० के जनसमूह एवं तीन दर्जन काशी के प्रतिष्ठित विद्वानों की सभा में एक नवयुवक संन्यासी जिसको कोई नहीं जानता था, उसके द्वारा काशी के विद्वानों की वेद-सम्बन्धी अज्ञानता की पोल खुल गयी। इस सभा से यह सिद्ध हो गया कि उस सभा में उपस्थित विद्वानों को वेद सम्बन्धी कुछ भी ज्ञान या गति नहीं है। विषय था- 'क्या मूर्तिपूजा वेदानुकूल है?' काशी के पण्डित वेद से इतना भयभीत थे कि वे वेदों के नाम एवं चर्चा से भी घबड़ाते थे। शास्त्रार्थ को पूरे समय तक इधर-उधर के वितण्डावाद में उलझे एवं उलझाये रखा। लगभग तीन दर्जन काशी के पण्डित एक तरफ और दूसरी तरफ स्वामी दयानन्द अकेले थे। मूल प्रश्न जिस पर शास्त्रार्थ होना था, उस पर कोई चर्चा ही नहीं हुई। वह बिल्कुल अच्छूता रह गया सभा का अन्त हुल्लडबाजी एवं शोर-शराबा के साथ हुआ स्थिति को देखते हुए शहर कोतवाल बाँदा निवासी रघुनाथ प्रसाद सहाय ने नवयुवक सन्यासी दयानन्द की एक कमरे में रक्षा किया। यही था काशी का शास्त्रार्थ! पाठकबन्धु स्वयं विचार करें।

उसी समय कलकता उच्च न्यायालय के एक सुप्रसिद्ध बैरिस्टर श्री चन्द्रशेखर सेन, जो काशी में सर्वप्रथम बार देवदर्शन एवं पूजन के लिए आये थे संयोगवश उपस्थित थे। बंगाली चन्द्रशेखर सेन ने सभा की सम्पूर्ण घटना को अपनी आँखों से देखा। उसने एक नवयुवक संन्यासी के वेद-सम्बन्धी ज्ञान को देखा तथा काशी के तीन दर्जन विद्वानों के अपूर्व अज्ञान को भी देखा; तथा सभा का अन्त किस प्रकार हुल्लड़बाजी के साथ हुआ, वह भी काशी नरेश ईश्वरीय नारायण सिंह की देखरेख में चलनेवाली सभा में, तथा काशी नरेश के द्वारा दोनों हाथों से बजायी जाने वाली तालियों को भी देखा।

यह सब देखकर सभा के पश्चात् उसी दिन सायंकाल नवयुवक सन्यासी की विद्वता से प्रभावित बैरिस्टर चन्द्रशेखर सेन दयानन्द सन्यासी को तत्कालीन भारत की राजधानी कलकत्ता आने का अनुरोध के साथ निमन्त्रण दे बैठे। तत्कालीन समाचार-पत्रों के द्वारा दयानन्द एक ही दिन में न केवल भारत-भूमि में, अपितु पूर्वी एवं पश्चिमी संसार में भी प्रसिद्ध हो गये। इसका एक प्रमुख कारण यह था कि काशी भारतीय संस्कृति की राजधानी प्राचीनकाल से थी और शास्त्रार्थ भी उसी सांस्कृतिक राजधानी में हो रहा था, अन्यत्र नहीं। इसी कारण ईंसाई मिशनरियों में बहुत काफी जागरूकता तथा जिज्ञासा बनी हुई थी और ईंसाई मिशनरियों ने बहुत बढ़-चढ़कर इस कार्य में भाग लिया। वे भी वहाँ पहले से उपस्थित थे। चन्द्रशेखर सेन एवं समाचार-पत्रों के माध्यम से काशी-शास्त्रार्थ की घटना एवं उसके परिणाम की जानकारी होने पर ब्रह्म समाज के नायक देवेन्द्रनाथ टैगोर जो प्रथम भारतीय आई.सी.एस. सत्येन्द्रनाथ टैगोर एवं विश्वकवि रविन्द्रनाथ टैगोर के पिता भी थे, वह एक बार पुनः सोचने के लिए विवश हो गये कि जो मेरे चार शिष्य जिस काशी से वेद का ज्ञान प्राप्त करके आये थे, उस काशी के विद्वानों की वेद के विषय में कुछ भी ज्ञान एवं नहीं जान पड़ती है। अतः देवेन्द्रनाथ टॅगोर ने मन में कुछ दिन पहले वेदों के प्रति जो अशुभ विचार उत्पन्न हुए थे, उस विचार में पुनः परिवर्तन आ गया। वे सोचने के लिए विवश हो गये कि कोई एक नहीं, बल्कि तीन दर्जन काशी के चुने हुए विद्वान एक नवयुवक संन्यासी जिसको आज तक कोई नही जानता था, उसके वेद विषयक ज्ञान के समक्ष वेद के सम्बन्ध में असहाय हो गये। अतः दयानन्द को काशी का विजेता एवं वेदों का ज्ञाता समझकर लगभग तीन माह पश्चात् ही प्रयाग के कुम्भ मेले में जनवरी १८७० में खोजते हुए प्रयाग जा पहुँचे। अपने परिचय के साथ स्वामी दयानन्द को बड़े ही सम्मान के साथ भारतवर्ष की राजधानी कलकत्ता आने का निमन्त्रण दिया। स्वामी दयानन्द ने उस निमन्त्रण तथा उनके अनुरोध को स्वीकार कर लिया परन्तु अत्यन्त व्यस्त कार्यों के कारण १६ दिसम्बर १८७२ को कलकत्ता नगर में प्रवेश किया।

भारतवर्ष की राजधानी कलकत्ता उनके आने की लम्बे समय से प्रतीक्षा कर रही थी। जिन लोगों ने स्वामीजी का कलकत्ता में स्वागत किया, उन लोगों में से कुछ प्रतिष्ठित लोगों का उल्लेख करना उचित समझता हूँ। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, योगीराज अरविन्द घोष के नाना राजनारायण वसु तथा विश्वविख्यात प्रवक्ता केशवचन्द्र सेन के अतिरिक्त कलकत्ता में उस समय जितने प्रगतिशील विचारों के व्यक्ति थे, उनमें से शायद ही कोई बचा हो जिसने स्वामी दयानन्द से मिलकर उनका सम्मान न किया हो। शिक्षित एवं बुद्धिजीवी लोग संस्कृत के एक धुरन्धर पंडित दयानन्द के मुख से सनातनी अन्ध परम्परा के विपरीत अत्यन्त आधुनिक विचारों का प्रतिपादन-सो भी वेदादि शास्त्रों के आधार पर देखकर दंग रह जाते थे। उनकी तर्क प्रवीणता एवं प्रत्युत्पन्न मतिता तो दिग्गजों के भी छक्के छुड़ा देती थी। उपर्युक्त लेखों के अतिरिक्त उमेशचन्द्र बनर्जी, जो १८८५ ई. में बम्बई में स्थापित अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रथम अध्यक्ष बने, वह भी मौजूद थे। इनके अतिरिक्त बैरिस्टर चन्द्रशेखर सेन, जिनका पूर्व में उल्लेख कर चुका हूँ, सत्यव्रतसामस्रमी द्विजेन्द्रनाथ ठाकूर, समुद्रनाथ ठाकुर, त्रिदेव भट्टाचार्या, कृष्णदास पाल, राजेन्द्रनाथ मलिक, महाराज जितेन्द्र ठाकूर, उत्तरपाड़ा के प्रसिद्ध जमींदार किशन मुखोपाध्याय, भूदेव मुखोपाध्याय, राजेन्द्र पाल मित्रा, रामतनु लाहिड़ी, प्रसिद्ध इतिहासकर रमेशचन्द्र दत्त, डॉ. महेन्द्रलाल सरकार, प्रतापचन्द्र मजूमदार, उमेशचन्द्र मित्र, आचार्य सूर्यकान्त चौधरी, रजनीकान्त गुप्त, यतीन्द्रमोहन ठाकूर (गर्वनर के काउन्सिल के सदस्य), द्वारिकानाथ गांगुली, गंगाधर कविराज, अक्षय कुमार दत्त, महेशचन्द्र न्यायरत्न आदि ये सभी उस समय के बुद्धिजीवी, समाजसुधारक, राष्ट्रहित-चिन्तक संभ्रान्त वर्ग के प्रतिनिधि कहे जाते थे। आचार्य केशवचन्द्र सेन, ईश्वरचन्द्र विद्यसागर, देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने अपनी ओर से कुछ ऐसे संस्कृतज्ञ पंडितों को लेखक के रूप में नियुक्त किया जो उनके उपदेशों को यथाशक्ति लिपिबद्ध करते रहे।

३० दिसम्बर १८७२ को 'Indian Mirror' ने लिखा- ''मूर्तिपूजा के महान शत्रु स्वामी दयानन्द काशी के पण्डितों को शास्त्रार्थ में पराजित करने के पश्चात् यतीनन्द्रमोहन नगर के 'नायनान उद्यान' (प्रमोद कानन) में ठहरे हुए है और लोगों की शंकाओं का नित्य समाधान कर रहे हैं।''

दयानन्द तथा केशवचन्द्र सेन में वार्तालाप-

एक दिन अपने समय के बहुत बड़े स्पीकर केशवचन्द्र सेन ने स्वामी दयानन्द के समक्ष कहा- ''स्वामीजी! आप वेद को जैसे ईश्वरीय ज्ञान मानते है, उसी प्रकार अन्य धर्म के लोग भी अपने धर्मग्रन्थों को ईश्वर द्वारा दिया गया ज्ञान मानते हैं। पुन: वेद को ही केवल ईश्वरीय ज्ञान कहना कहाँ तक सत्य है?'' स्वामी दयानन्द ने लगभग १० मिनट में ही केशवचन्द्र सेन जैसे विश्वविख्यात वक्ता की बोली मात्र तीन-चार उदाहरणों को देकर बन्द कर दिया।

''ईश्वर सृष्टि का रचयिता है अत: वह सृष्टि के नियमों को भी ठीक-ठीक जानता है। ईश्वरीय ज्ञान कहलानेवाली वही पुस्तक होगी जिसका ज्ञान सृष्टि के नियमों के अनुकूल हो। पृथ्वी में चलन की गति है परन्तु वेद को छोड़कर सभी धर्मग्रन्थ जो अपने को ईश्वर द्वारा दिया गया ज्ञान कहते हैं, उन ग्रन्थों में पृथ्वी नहीं चलती है तथा गोल होने के स्थान पर चपटी बताते हैं। वेद में तो पृथ्वी चलती है। पृथ्वी की विद्या को तो भूगोल की विद्या यहाँ सभी जानते है। वेद में पृथ्वी गोल है। ईसाई लोगों ने गैलीलियो को १० वर्ष की सजा तथा ब्रूनो को जीवित जला दिया क्योंकि वे पृथ्वी के चलने तथा गोल होने की बात करते थे। तारों का पृथ्वी पर गिर पड़ना, मात्र ६ दिन में संसार का बन जाना- यह सृष्टि तथा विज्ञान, दोनों के नियम के विरूद्ध है। छठवें दिन संसार को बनाकर ईश्वर का सातवें दिन थककर फर्श से अर्श पर जाकर आराम करना तथा जब सृष्टि का प्रवाह करोड़ों वर्ष पहले से चल रहा था तो केवल आज से २००० वर्ष पहले अपने ज्ञान मनुष्यों को देने की बात करना क्या ईश्वर की न्यायप्रियता को चुनौती नहीं है? २००० वर्ष से पूर्व के लोगों के प्रति क्या ईश्वर अन्यायी नहीं है?...'' इत्यादि।

केशवचन्द्र स्वामी दयानन्द के तर्कपूर्ण उत्तर को सुनकर मौन हो गये। पुन: केशवचन्द्र सेन ने कहा- ''वेदों का इतना बड़ा विद्वान अंग्रेजी नहीं जानता! स्वामी दयानन्द मुस्कुराते हुए बोले-''अंग्रेजी भाषा का इतना बड़ा विद्वान वेदों के विषय था उसके ज्ञान से अपरिचित है अन्यथा वेद के प्रचार में सहायता मिलती।''

कलकता के बड़े चर्च का पादरी ने स्वामीजी को चर्च में बुलाया। वहीं पर बंगाल के तत्कालीन वायसराय नार्थब्रुक से स्वामीजी की मुलाकात हुई। लगभग साढ़े तीन माह तक कलकत्ता में रहने के पश्चात् तथा केशवचन्द्र सेन के दो सुझाव- १. शरीर पर वस्त्र धारण करना तथा २. जनता की भाषा हिन्दी को स्वीकार करके दयानन्द ने कलकत्ता से प्रस्थान किया। कलकत्ता छोड़ने के १३ माह बाद मई १८७४ में स्वामी दयानन्द ने पहली बार काशी में जनता के सामने अपनी हिन्दी भाषा में व्याख्यान दिया। यह हिन्दी में व्याख्यान देने का प्रयास मात्र था। वाराणसी के तत्कालीन डिप्टी कलेक्टर मुरादाबाद के रहने वाले राजा जयकिशनदान सी.एस. आई. ने दयानन्द से अपने अमृतमय वचनों को लिपिबद्ध करने का अनुरोध किया। स्वामी दयानन्द ने उस अनुरोध को स्वीकार कर लिया। १२ जून से ३० सितम्बर १८७४ तक कुल साढ़े तीन माह में अपनी विश्वविख्यात पुस्तक 'सत्यार्थ प्रकाश' लिखकर राजा जयकिशनदास को छपवाने का भार सौंपकर नासिक होते हुए १८७५ में बम्बई में अप्रैल माह में आर्य समाज की स्थापना की।

प्रथम भारतीय न्यायाधीश बाम्बे हाइकोर्ट के महादेव गोविन्द रानाडे के अनुरोध पर जुलाई १८७५ के अन्त तक पूना पहुँचे। पूना में स्वामी दयानन्द का स्वागत करने वालों में समाज-सुधारक महाराष्ट्र के दलित नेता ज्योतिबा फूले तथा महाराष्ट्र के 'लोकहितवादी सभा' के अध्यक्ष गोपालराव हरि देशमुख भी थे। दलित नेता ज्योतिबा फूले तो इतना प्रभावित था कि दयानन्द के जूलूस का पैदल ही नेतृत्व कर रहा था जबकि दयानन्द बैलगाड़ी पर थे। गोपालराव हरि देशमुख ने स्वामीजी से वेदभाष्य करने का अनुरोध किया जिसे स्वामीजी ने स्वीकार कर लिया। महाराष्ट्र से लौटने के पश्चात् उन्होंने वेद्भाष्य का भाद्रमास सन् १८७५ में अयोध्या नगर के सरयू बाग में आरम्भ किया।

॥ओ३म्॥

विचार शक्ति का चमत्कार

(प्रेम से परमात्मा तक)

प्रिय पाठकों

पिछले अंक मे हमने जीवन में स्वीकारिता का महत्त्व समझा जो कि जीवन का मूलमंत्र है। प्रेम से परमात्माका मार्ग जो कि समष्टि की अटूट सम्पदा प्राप्त करने की ओर ले जाता है दिखने में आसान लेकिन उतना ही कठिन है। बिना शर्त माफ करो, बिना शर्त प्रेम करो और जीवन में हर चीज को पसंद करते चलो यह साक्षीभाव का प्रथम सिद्धान्त है। माफ तो हम तभी करेंगे जब कोई हमारा अनर्थ करेगा लेकिन किसी से प्रेम बिना शर्त किया जा सकता है। जितने भी संसार में प्राणीमात्र हैं वे सभी परमात्मा की बनाई मूर्तियाँ हैं। उनसे प्रेमकरना परमात्मा से प्रेम करने बराबर है। इसमें स्व से प्रेम करना भी शामिल है। जीवन की अच्छाईयो को, सफलता को हर जड़ पदार्थ को पसंद करते चले जाओ। एसा करने से हम हर पदार्थ से एकाकार कर लेते हैं। हर किसी को धन्यवाद देना भीठा बोलना या समस्या के प्रति मुस्कराते रहना भी इसी का अंग है। इसी के चलते मैने जीवन को तीन भागों में विभाजित किया है। १) ध्यान। ध्यान केवल परमात्मा का ही नही बल्कि हर उस वस्तु का करना है जिसे हम प्राप्त करना चाहते हैं। उससे वह वस्तु हमारी और आकर्षित होती चली जाती है। यह शक्तियो का संग्रह या प्राप्त करने का तरीका है। यानि कर्म करने से पूर्व की स्थिति। बुद्धि को रिचार्ज करना। २) सकारात्मक सोच। यह कर्म के स्तर पर करने की स्थिति है। इसे रिफिल भी कह सक्ते है। इस पर विस्तार से अगले अंक में चर्चा करेंगे।

३) प्रेम से परमात्मा तक। यह मोक्ष का रस्ता भी है। जिसे जीवित रहते पाप्त कर सकते हैं। ईश्वर की कृपा उसी पर रहती है जो उसकी बनाई मूर्तियो की पूजा करता है। जितना हम दूसरों के प्रति प्रेम और अच्छी भावना रखेंगे उतनाही हमारे दिमाग के केमिकल में अमृत घुलेगा और हमारा जीवन निरंतर अच्छाई एवं उच्चता की ओर बढ़ता चला जाएगा। हमारा मानस व चित्त उतना ही शुध्द होगा। धन्यवाद।

राजकुमार भगवती प्रसाद गुप्त
उपप्रधान- आर्य समाज, वाशी

नूतन निष्काम पत्रिका वर्ष-९ अंक-४ मुम्बई अप्रैल- २०१८ || पृष्ठ-१६ || मूल्य- रु. १/-

वैशाख - २०७४ (२०१८) Post Date : 25-04-2018 MCN/136/2016-2018 MAHRIL 06007/31/12/18-TC पोष्ट आफिस : सांताक्रुज़ (प.)

आर्य समाज सान्ताक्रुज मुम्बई का मुखपत्र

संपादक : **संगीत आर्य**

मुद्रक एवं प्रकाशक : **चन्द्रपाल गुप्त द्वारा कृष्णा प्रिंटिंग प्रेस,** २६, मंगलदास रोड, मुंबई-२. से मुद्रित कराकर आर्य समाज भवन, वी. पी. रोड, (लिंकिंग रोड़), सान्ताक्रुज़ (प.) मुंबई-४०० ०५४. से प्रकाशित किया। ● **दूरभाष : २६६० २८००/२६६० २०७५**

प्रति,

टिकट

मन/मनोबल

डॉ. विनोदचन्द्र विद्यालंकार

अगन्महि मनसा सशिवेन (२।२४)
हम शिव मन से संयुक्त हों।
मनो न्वाह्वामहे (३।५३)
हम अपने अन्दर मनोबल का आह्वान करते हैं।
आ नऽएतु मनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे (३।५४)
कर्म के लिए, दक्षता के लिए, जीवन के लिए पुनः हमारे अन्दर मनोबल आये।
पुनर्नः पितरो मनो ददातुं दैव्यो जनः (३।५५)
पितृजन तथा देवजन हमें पुनः मनोबल प्रदान करें।
भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये (१५।३९)
पाप के वध के लिए मन को भद्र बना।
तव चित्तं वातऽइव ध्रजीमान् (२९।२२)
तेरा चित्त वायु के समान वेगवान है।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकम् (३४।१)
मन दूर-दूर तक जाने वाला तथा ज्योतियों की एक ज्योति है।
तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु (३४।१)
वह मेरा मन शिवसंकल्प वाला हो।

शक्तिसंचय

मयीदमिन्द्रऽ इन्द्रियं दधातु (२।१०)
मेरे अन्दर परमेश्वर इन्द्रियसामर्थ्य उत्पन्न करे।
सं वर्चसा पयसा सन्तनूभिः (२।२४)
हम तेज से, दूध से और शरीरों से संयुक्त रहें।
अनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् (२।२४)
हमारे शरीर की जो न्यूनता है उसे प्रभु पूर्ण करे।
जीवं व्रात सचेमहि (३।५५)
हम जीवितों की श्रेणी में जा मिलें।
पुनर्मनः पुनरायुर्म आगन् (४।१५)
हमें पुनः मन, पुनः आयु प्राप्त हो।
पुनः प्राणः पुनरात्मा मआगन् (४।१५)
हमें पुनः प्राण, पुनः आत्मा प्राप्त हो।
पनश्चक्षुः पनः श्रोत्र मआगन् (४।१५)
हमें पुनः चक्षु, पुनः श्रोत्र प्राप्त हों।
तन्वो यन्त्रमशीय (४।१८)
मैं शरीर की दृढ़ता को प्राप्त करूँ।
सूर्यस्य चक्षुरारोहाग्नेरक्षणः कनीनकम् (४।३२)
सूर्य जैसी आँख पाओ, अग्नि की आँख जैसी पुतली पाओ।
मनस्तऽआप्यांयतां वाक् तऽआप्यायताम् (६।१५)
तेरा मन पुष्ट हो, तेरी वाणी पुष्ट हो।
प्राणस्तुऽआप्यायता चक्षुस्तऽआप्यायताम् (६।१५)
तेरा प्राण पुष्ट हो, तेरी चक्षु पुष्ट हो।
श्रोत्र तऽआप्यायताम् (६।१५)
तेरा श्रोत्र पुष्ट हो।
यत्ते क्रूर यदास्थित तत्तऽआर्प्यायताम् (६।१५)
जो तेरा अंग विकृत या क्षतिग्रस्त हो गया है वह पुष्ट हो जाये।
स्थिरो भव वीड्वङ्गः (११।४४)
हे मनुष्य, तू स्थिर हो, दृढांग हो।
अश्याम वाजमभि वाजयन्तः (१८।७४)
बल प्रासिक का प्रयत्न करते हुए हम बल को प्राप्त कर लें।
सुवीयस्य पतयः स्याम (२०।५१)
हम उत्तम बल के अधिपति हो जायें।
अश्मा भवतु नस्तनूः (२९।४९)
हमारा शरीर पत्थर के समान दृढ़ हो।

❒❒❒